* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

वर्ष ९८

संख्या ३

गीताप्रेस, गोरखपुर

चन्द्र-खिलौना

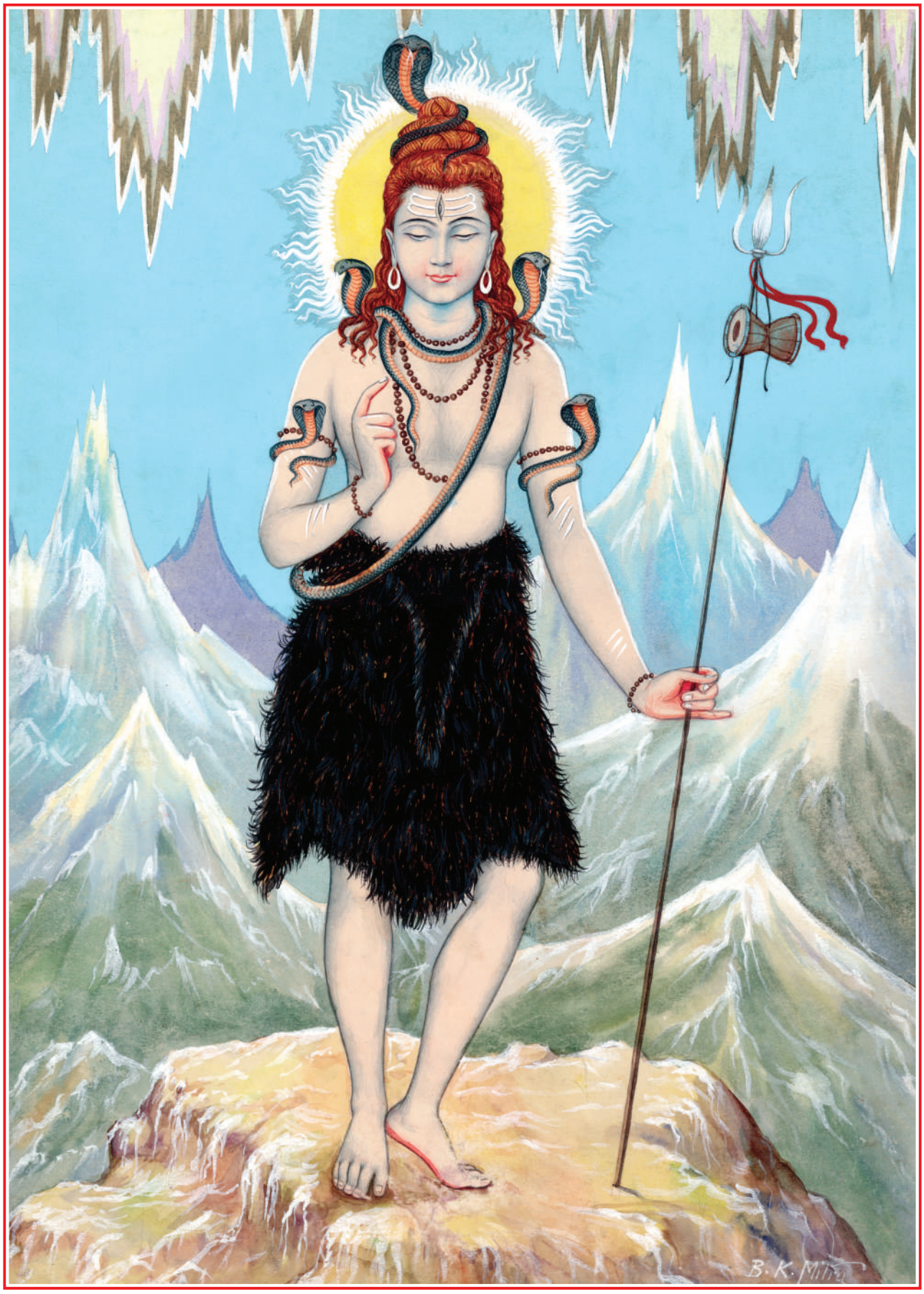

परमात्मप्रभु शिव

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

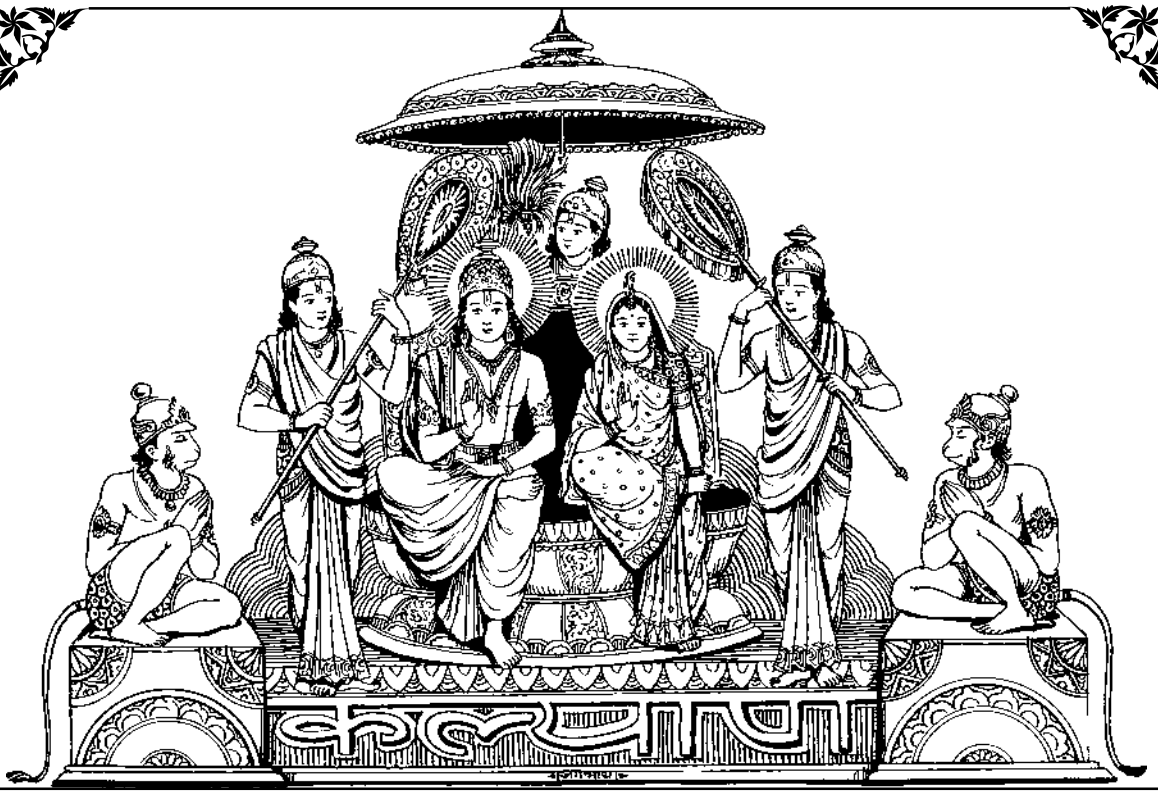

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्॥

वर्ष ९८ | गोरखपुर, सौर चैत्र, वि० सं० २०८०, श्रीकृष्ण-सं० ५२४९, मार्च २०२४ ई० | संख्या ३
पूर्ण संख्या ११६८

परमात्मप्रभु शिव

वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं व्याप्य स्थितं रोदसी
यस्मिन्नीश्वर इत्यनन्यविषयः शब्दो यथार्थाक्षरः।
अन्तर्यश्च मुमुक्षुभिर्नियमितप्राणादिभिर्मृग्यते
स स्थाणुः स्थिरभक्तियोगसुलभो निःश्रेयसायास्तु वः॥

वेदान्तग्रन्थोंमें जिन्हें एकमात्र परम पुरुष परमात्मा कहा गया है, जिन्होंने समस्त अन्तरिक्ष और पृथिवीको अन्तर्बाह्य—सर्वत्र व्याप्त कर रखा है, जिन एकमात्र महादेवके लिये 'ईश्वर' शब्द अक्षरशः यथार्थरूपमें प्रयुक्त होता है और जो किसी दूसरेके विशेषणका विषय नहीं बनता, अपने अन्तर्हृदयमें समस्त प्राणोंको निरुद्ध करके मोक्षकी इच्छावाले योगीजन जिनका निरन्तर चिन्तन और अन्वेषण करते रहते हैं, वे नित्य एक समान सुस्थिर रहनेवाले, महाप्रलयमें भी विकारको प्राप्त न होनेवाले और भक्तियोगसे शीघ्र प्रसन्न होनेवाले भगवान् शिव आप सभीका परम कल्याण करें। [**विक्रमोर्वशीयम्** १। १]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण १,८०,०००)

कल्याण, सौर चैत्र, वि० सं० २०८०, श्रीकृष्ण-सं० ५२४९, मार्च २०२४ ई०, वर्ष ९८—अंक ३

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- परमात्मप्रभु शिव	३
२- सम्पादकीय	५
३- कल्याण	६
४- चन्द्र-खिलौना **[आवरणचित्र-परिचय]**	७
५- अभावग्रस्त प्राणीको दान देना उत्तम दान है (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	८
६- आत्मसम्बन्ध **[बोध-कथा]**	९
७- वेदान्तका काम (ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती)	१०
८- शरणागतिका फल **[बोध-कथा]**	११
९- तेरी हँसी (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१२
१०- भगवान्‌के विधानका आदर करो (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	१३
११- आदर्श बहू **[साधकोंके प्रति]** (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१४
१२- ईश्वर कहाँ? (श्रीरूपचन्दजी शर्मा)	१७
१३- मेरे राम एवं रामकथा (डॉ० श्रीआदित्यजी शुक्ल)	१८
१४- श्रीहनुमान्‌जीकी दास्य भक्ति (श्रीगोपालदासजी)	२१
१५- प्रभुके प्रति पूर्ण समर्पण आवश्यक (डॉ० श्रीयमुनाप्रसादजी अग्रवाल)	२२
१६- अभी और कुछ बाकी है (वैद्य श्रीलक्ष्मणप्रसादजी भट्ट दीक्षित)	२४
१७- 'अबलौं नसानी, अब न नसैहौं' (डॉ० श्रीफूलचन्द प्रसादजी गुप्त)	२५
१८- वसुनायकजीकी भोजपुरी रामलीला रामायण (श्रीउमेशप्रसाद सिंहजी)	२७
१९- साधकोंकी अद्भुत कथाएँ (डॉ० श्रीप्रदीपजी आप्टे)	२९
२०- प्राचीन भारतीय स्वास्थ्य-सूत्र **[आरोग्य-चर्चा]**	३२
२१- बुरी योनिसे उद्धार **[बोध-कथा]**	३३
२२- महाभारतकालीन वनखण्डेश्वर शिव-मन्दिर, दतिया **[तीर्थ-दर्शन]** (डॉ० श्रीरामेश्वर प्रसादजी गुप्त)	३४
२३- नजरिया **[बोध-कथा]**	३५
२४- भक्तिमती आण्डाळ या रंगनायकी **[सन्त-चरित]**	३६
२५- गोभक्त गोविन्ददास **[गो-चिन्तन]**	३९
२६- सुभाषित-त्रिवेणी	४०
२७- व्रतोत्सव-पर्व **[वैशाखमासके व्रत-पर्व]**	४१
२८- कृपानुभूति	४२
२९- पढ़ो, समझो और करो	४३
३०- मनन करने योग्य	४६
३१- कल्याणका आगामी ९९वें वर्ष (सन् २०२५ ई०)-का विशेषाङ्क— **पर्यावरण-अङ्क**	४७

चित्र-सूची

१- चन्द्र-खिलौना	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ	
२- परमात्मप्रभु शिव	(,,)	मुख-पृष्ठ	
३- चन्द्र-खिलौना	(इकरंगा)	७	
४- गजेन्द्र-मोक्ष	(,,)	२२	
५- वस्त्रावतार	(इकरंगा)	२३	
६- श्रीवनखण्डेश्वर महादेव, दतिया	(,,)	३४	
७- भक्तिमती आण्डाळ	(,,)	३६	
८- भक्त प्रह्लाद	(,,)	४६	

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / एकवर्षीय शुल्क ₹300 मासिक अंक साधारण डाकसे
पञ्चवर्षीय शुल्क ₹2500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / पञ्चवर्षीय शुल्क ₹1500 मासिक अंक साधारण डाकसे
विदेशमें Air Mail शुल्क वार्षिक US$ 50 (₹4,000) / Cheque Collection Charges 6 $ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका** आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़,** सहसम्पादक—**कृष्णकुमार खेमका**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242/244** | **WhatsApp : 9648916010, 8188054404**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—273005, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता हेतु gitapress.org के **Kalyan** पर click करके **Subscribe** option पर click करें।
'कल्याण' के मासिक अङ्क www.gitapress.org के **E-Books Option** पर नि:शुल्क पढ़ें।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

॥ श्रीहरिः ॥

अथर्ववेदका एक मन्त्र है—

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर।
कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह॥

इसका अर्थ है—सौ हाथोंसे इकट्ठा करो और हजार हाथोंसे बाँटो। तुम्हारे किये हुए [कार्यों]-की इसी जीवनमें प्रसिद्धि हो।

एक ओर मन्त्रद्रष्टा ऋषिने पुरुषार्थकी प्रेरणाके साथ उदारताका उपदेश किया है, वहीं यह आशीर्वचन सचेत करता है कि हम ऐसे कार्य करें, जिनकी प्रसिद्धि हमें पुलकित करे; न कि हमसे ऐसा कुछ हो जाय, जिसके फैल जानेसे हमें मुँह छिपाना पड़े।

गृहस्थ-धर्म तलवारकी धारपर चलने-जैसा है। भगवत्-कृपाके भरोसे ही यह यात्रा सानन्द पूरी होती है। यह भरोसा भी उन्हींकी कृपासे आता है। प्रयत्न करना अपने हाथमें है।

—सम्पादक

हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

कल्याण

याद रखो—जब यह संसार और संसारके प्राणिपदार्थ इस रूपमें नहीं थे, तब भी भगवान् थे और अब, जब कि संसारकी ये वस्तुएँ विभिन्न रूपोंमें प्रकट हैं, तब भी भगवान् हैं तथा जब ये पुनः नहीं रहेंगी, तब भी भगवान् रहेंगे। ऐसा कोई देश, काल या वस्तु है ही नहीं, जिसमें भगवान् न हों, वरं देश, काल, वस्तु ही भगवान्‌में हैं। भगवान्‌के बिना किसीका भी कभी भी कोई अस्तित्व नहीं है। भगवान् सबमें भरे हैं, भगवान्‌में ही सब हैं, भगवान् ही भगवान् हैं।

याद रखो—संसार और संसारके प्राणिपदार्थमें कोई दोष नहीं है, दोष है—तुम्हारी विषयवासनामें, भोगकामनामें और इन्द्रियासक्तिमें। यदि तुम्हारे मनमें भोगोंकी वासना, कामना और उनमें आसक्ति नहीं है तो कोई भी भोग तुम्हें न तो बाँध सकता है, न तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट ही कर सकता है।

याद रखो—भोगसेवनमें आसक्ति न हो, भोग-सुखकी कामना न हो तो प्रत्येक भोग भगवान्‌की पूजन-सामग्री बन जाता है और फिर वह अपनी नगण्य सत्ताको भगवान्‌की महान् तथा अनन्त सत्तामें खो देता है। सुख-शान्ति तो फिर स्वरूपगत हो जाती है।

याद रखो—तुम सुख-शान्ति चाहते हो। सभी चाहते हैं। पर सुख-शान्ति जहाँ है, वहाँ कोई नहीं जाना चाहता। वरं उलटे उसके विपरीत मार्गपर चलता है। समस्त सुखोंके, शान्तिके मूल केन्द्र हैं श्रीभगवान्। जो उनको अपना सुहृद् मान लेता है, उसे तुरन्त सुख-शान्ति मिल जाते हैं। जो सारी कामना-स्पृहा तथा ममता-अहंकारको भगवान्‌में समर्पितकर भगवान्‌का हो जाता है, उसे तुरन्त सुख-शान्ति मिलते हैं। पर यदि तुम भगवान्‌को भूलकर केवल भोगोंसे ही सुख-शान्ति चाहोगे तो तुम्हें निराश ही होना पड़ेगा।

याद रखो—भगवान्‌से रहित जितने भी भोग हैं, एक बार चाहे भ्रमवश वे सुखरूप दिखायी दें, पर परिणाममें उनसे दुःख ही मिलेगा; क्योंकि वे दुःखोंको उत्पन्न करनेवाले हैं। जैसे घरमें आग लगनेपर एक बार बड़ा प्रकाश दीखता है, परंतु परिणाममें वह घरका नाशक होता है; इसी प्रकार भोग-सुख भी एक बार मधुर तथा उल्लासप्रद लगता है, परंतु परिणाम विषवत् और भयानक दुःखप्रद होता है।

याद रखो—तुम जो भोगपदार्थोंको पाकर एक बार भूल जाते हो और अपनेको सुखी अनुभव करते हो, सो तुम्हारा वह सुख ऐसा ही है, जैसा शराबीको शराबके नशेमें अनुभव होनेवाला सुख। शराबी गन्दी नालीमें पड़ा सुखके गीत गाता है, वैसे ही तुम भी भोगमदमें चूर हुए भोगसुखका बखान करते हो।

याद रखो—वस्तुकी प्राप्ति वहीं होती है, जहाँ वह होती है। बालूसे तेल नहीं निकलता, जलसे भी नहीं निकलता। सूर्यसे अन्धकार नहीं निकलता। चन्द्रमासे अग्नि नहीं निकलती। वैसे ही सुख-शान्ति भगवान्‌के बिना और कहींसे नहीं मिल सकती; क्योंकि और कहीं भी वह है नहीं।

याद रखो—भगवान्‌में जो स्वरूपभूत सुख-शान्ति है, वही असली सुख-शान्ति है। संसारके सुख-शान्ति तो ऊपरसे मधुर प्रतीत होते हुए जहरभरे लड्डू ही हैं, जो अन्दर जाकर एक भीषण जलन उत्पन्न कर देते हैं तथा सर्वस्वका विनाश करते हैं।

याद रखो—जो लोग भगवान्‌में ही लगे हैं, केवल भगवान्‌से ही सुख-शान्ति चाहते हैं, जिनका ऐसा दृढ़ विश्वास है कि सुख-शान्ति भगवान्‌के सिवा और कहीं है ही नहीं, उनका भगवान्‌को छोड़कर न तो और कहीं मन जाता है, न श्रद्धा ही होती है। उनके सम्पर्कमें आनेवाले सारे विषय—विषयासक्तिके पदार्थ न रहकर भगवान्‌की दिव्य अनुभूति करानेवाले बन जाते हैं।'**शिव**'

आवरणचित्र-परिचय—

चन्द्र-खिलौना

एक दिनकी बात है। यशोदा मैया गोपिकाओंके साथ कान्हाकी बाल-सुलभ लीलाओंकी चर्चा कर रही थीं। खेलते-खेलते अचानक कन्हैयाकी दृष्टि चन्द्रमापर पड़ी। उन्होंने पीछेसे आकर यशोदा मैयाका घूँघट उतार लिया। अपने कोमल करोंसे उनकी चोटी पकड़कर खींचने लगे और बार-बार पीठ थपथपाने लगे। श्रीकृष्ण बोले—'माँ! मैं लूँगा।' जब मैयाकी समझमें बात नहीं आयी तो श्रीकृष्णको गोदमें ले लिया और पूछा—'लाला! तुम्हें क्या चाहिये, साफ-साफ बताओ। तुम्हें दूध, दही, मक्खन, मिसरी जो चाहोगे सब मिलेगा। अब मान भी जाओ, रूठो मत।' श्रीकृष्णने कहा—'घरकी वस्तु नहीं चाहिये।' उन्होंने अँगुली दिखाकर चन्द्रमाकी ओर संकेत किया और कहा—'वो चाहिये।' गोपियाँ बोलीं—'ओ मेरे बाप! यह कोई माखनका लोंदा थोड़े है? हाय! हाय! यह हम कैसे देंगी? यह तो प्यारा-प्यारा हंस है, जो आकाश-सरोवरमें तैर रहा है।' श्रीकृष्णने कहा—'मैं भी तो खेलनेके लिये उस हंसको ही माँग रहा हूँ। शीघ्रता करो। पार जानेके पहले ही उसे ला दो।'

यशोदाजीने कन्हैयाको गोदमें उठा लिया और कहा—'कान्हा! यह न तो राजहंस है, न चन्द्रमा। यह माखनका लोंदा है, किंतु तुम्हें देनेयोग्य नहीं है। देखो न, इसमें काला-काला विष लगा हुआ है। इसलिये इसे कोई नहीं खाता।' श्रीकृष्णने कहा—'मैया! मैया! इसमें विष कैसे लग गया?' यशोदाजीने कान्हाको गोदमें लेकर कथा सुनाना प्रारम्भ कर दिया।

यशोदाने कहा—'लाला! एक क्षीरसागर है।'

श्रीकृष्ण—'वह कैसा है, मैया?'

यशोदा—'बेटा! यह तुम जो दूध देख रहे हो न, इसीका एक समुद्र है।'

श्रीकृष्ण—'मैया! कितनी गायोंने दूध दिया होगा, तब समुद्र बना होगा!'

यशोदा—'यह गायका दूध नहीं है।'

श्रीकृष्ण—'मैया! तू मुझे बहला रही है। भला बिना गायके भी दूध कहीं होता है।'

यशोदा—'जिस भगवान्‌ने गायोंको बनाया, वे बिना गायोंके भी दूध बना सकते हैं।'

श्रीकृष्ण—'अच्छा ठीक है, आगे कहो।'

यशोदा—'एक बार देवता और दैत्योंमें युद्ध हुआ। दैत्य बलवान् थे। वे बार-बार देवताओंको हरा देते थे। भगवान्‌ने देवताओंको अमर बनानेके लिये क्षीरसागरको मथा। मन्दराचलकी मथानी बनी और वासुकि नागकी रस्सी बनायी गयी। एक तरफ देवता लगे और दूसरी तरफ दैत्य।'

श्रीकृष्ण—'जैसे गोपियाँ दही मथती हैं।'

यशोदा—'हाँ बेटा! उसीसे कालकूट नामक विष पैदा हुआ।'

श्रीकृष्ण—'माँ! विष तो साँपोंमें होता है, दूधमें कैसे निकला?'

यशोदा—'बेटा! वही विष भगवान् शंकरने पी लिया। उससे जो धरतीपर फुहियाँ पड़ीं, उसे पीकर साँप विषधर हो गये।' यशोदाने कन्हैयाको चन्द्रमाकी ओर दिखाकर कहा—'यह मक्खन भी उसीसे निकला है, इसलिये थोड़ा-सा विष इसमें भी लग गया। इसीको कलंक कहा जाता है। इसलिये तुम घरका मक्खन खाओ। इस मक्खनको पानेके लिये भूलकर भी मत सोचना।' कथा सुनते-सुनते कन्हैयाको नींद आ गयी और चन्द्र-खिलौनाकी बात जहाँ-की-तहाँ रह गयी।

अभावग्रस्त प्राणीको दान देना उत्तम दान है

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

एक महाजनकी कहानी है कि वह सदैव यज्ञादि कर्मोंमें लगा रहता था। उसने बहुत दान किया। इतना दान किया कि उसके पास खानेको भी कुछ नहीं रह गया। तब उसकी स्त्रीने कहा—'पासके गाँवमें एक सेठ रहते हैं, वे पुण्योंको मोल खरीदते हैं, अत: आप उनके पास जाकर और अपना कुछ पुण्य बेचकर द्रव्य ले आइये, जिससे अपना कुछ काम चले।' इच्छा न रहते हुए भी स्त्रीके बार-बार कहनेपर वह जानेको उद्यत हो गया। उसकी स्त्रीने उसके खानेके लिये चार रोटियाँ बनाकर साथ दे दीं। वह चल दिया और उस नगरके कुछ समीप पहुँचा, जिसमें वे सेठ रहते थे। वहाँ एक तालाब था। वहीं शौच-स्नानादि कर्मोंसे निवृत्त होकर वह रोटी खानेके लिये बैठा कि इतनेमें एक कुतिया आयी। वह वनमें ब्यायी थी। उसके बच्चे और वह, सभी तीन दिनोंसे भूखे थे; भारी वर्षा हो जानेके कारण वह बच्चोंको छोड़कर शहरमें नहीं जा सकी थी। कुतियाको भूखी देखकर उसने उस कुतियाको एक रोटी दी। उसने उस रोटीको खा लिया। फिर दूसरी दी तो उसको भी खा लिया। इस प्रकार उसने एक-एक करके चारों रोटियाँ कुतियाको दे दीं। कुतिया रोटी खाकर तृप्त हो गयी। फिर, वह वहाँसे भूखा ही उठकर चल दिया तथा उस सेठके पास पहुँचा। सेठके पास जाकर उसने अपना पुण्य बेचनेकी बात कही। सेठने कहा—'आप दोपहरके बाद आइये।'

उस सेठकी स्त्री पतिव्रता थी। उसने स्त्रीसे पूछा—'एक महाजन आया है और वह अपना पुण्य बेचना चाहता है। अत: तुम बताओ कि उसके पुण्योंमेंसे कौन-सा पुण्य सबसे बढ़कर लेनेयोग्य है।' स्त्रीने कहा—'आज जो उसने तालाबपर बैठकर एक भूखी कुतियाको चार रोटियाँ दी हैं, उस पुण्यको खरीदना चाहिये; क्योंकि उसके जीवनमें उससे बढ़कर और कोई पुण्य नहीं है।' सेठ 'ठीक है'—ऐसा कहकर बाहर चले आये।

नियत समयपर महाजन सेठके पास आया और बोला—'आप मेरे पुण्योंमेंसे कौन-सा पुण्य खरीदेंगे?' सेठने कहा—'आपने आज जो यज्ञ किया है, हम उसी यज्ञके पुण्यको लेना चाहते हैं।' महाजन बोला—'मैंने तो आज कोई यज्ञ नहीं किया। मेरे पास पैसा तो था ही नहीं, मैं यज्ञ कहाँसे कैसे करता।' इसपर सेठने कहा—'आपने जो आज तालाबपर बैठकर भूखी कुतियाको चार रोटियाँ दी हैं, मैं उसी पुण्यको लेना चाहता हूँ।' महाजनने पूछा—'उस समय तो वहाँ कोई नहीं था, आपको इस बातका कैसे पता लगा?' सेठने कहा—'मेरी स्त्री पतिव्रता है, उसीने ये सब बातें मुझे बतायी हैं।' तब महाजनने कहा—'बहुत अच्छा' ले लीजिये; परंतु मूल्य क्या देंगे? सेठने कहा—'आपकी रोटियाँ जितने वजनकी थीं, उतने ही हीरे-मोती तौलकर मैं दे दूँगा।' महाजनने स्वीकार किया और उसकी सम्मतिके अनुसार सेठने अंदाजसे उतने ही वजनकी चार रोटियाँ बनाकर तराजूके एक पलड़ेपर रखीं और दूसरे पलड़ेपर हीरे-मोती आदि रख दिये; किंतु बहुत-से रत्नोंके रखनेपर भी वह (रोटीवाला) पलड़ा नहीं उठा। इसपर सेठने कहा—'और रत्नोंकी थैली लाओ।' जब उस महाजनने अपने इस पुण्यका इस प्रकारका प्रभाव देखा तो उसने कहा कि 'सेठजी! मैं अभी इस पुण्यको नहीं बेचूँगा।' सेठ बोला—'जैसी आपकी इच्छा।'

तदनन्तर वह महाजन वहाँसे चल दिया और उसी तालाबके किनारेसे, जहाँ बैठकर उसने कुतियाको रोटियाँ खिलायी थीं, थोड़े-से चमकदार कंकड़-पत्थरों तथा काँचके टुकड़ोंको कपड़ेमें बाँधकर अपने घर चला आया। घर आकर उसने वह पोटली अपनी स्त्रीको दे दी और कहा—'इसको भोजन करनेके बाद खोलेंगे।' ऐसा कहकर वह बाहर चला गया। स्त्रीके मनमें उसे देखनेकी इच्छा हुई। उसने पोटलीको खोला तो उसमें हीरे-पन्ने-माणिक आदि रत्न जगमगा रहे थे। वह बड़ी प्रसन्न हुई। थोड़ी देर बाद जब वह महाजन घर आया तो स्त्रीने पूछा—'इतने हीरे-पन्ने कहाँसे ले आये?' महाजन

बोला—'क्यों मजाक करती हो?' स्त्रीने कहा—'मजाक नहीं करती, मैंने स्वयं खोलकर देखा है, उसमें तो ढेर-के-ढेर बेशकीमती हीरे-पन्ने भरे हैं।' महाजन बोला—'लाकर दिखाओ।' उसने पोटली लाकर खोलकर सामने रख दी। वह उन्हें देखकर चकित हो गया। उसने इसको अपने उस पुण्यका प्रभाव समझा। फिर उसने अपनी यात्राका सारा वृत्तान्त अपनी पत्नीको कह सुनाया।

कहनेका अभिप्राय यह कि ऐसे अभावग्रस्त आतुर प्राणीको दिये गये दानका अनन्तगुना फल हो जाता है, भगवान्‌की दयाके प्रभावसे कंकड़-पत्थर भी हीरे-पन्ने बन जाते हैं।

इस प्रकार दीन-दुखी, आतुर और अनाथको दिया गया दान उत्तम है। किसीके संकटके समय दिया हुआ दान बहुत ही लाभकारी होता है। भूकम्प, बाढ़ या अकाल आदिके समय आपद्ग्रस्त प्राणीको एक मुट्ठी चना देना भी बहुत उत्तम होता है।

बोध-कथा—

आत्मसम्बन्ध

स्वामी रामतीर्थ जापानसे अमेरिका जा रहे थे। प्रशान्त महासागरका वक्ष विदीर्ण करता हुआ उनका जहाज सैन-फ्रांसिस्कोके एक बन्दरगाहपर आ लगा। सब यात्री उतर गये। जहाजके डेकपर स्वामी रामतीर्थ टहल रहे थे। ऐसा लगता था कि वे जहाजसे उतरना ही नहीं चाहते हों। एक अमेरिकन सज्जन उनकी गति-विधिका निरीक्षण कर रहे थे।

'आपका सामान कहाँ है? आप उतरते क्यों नहीं हैं?' अमेरिकन सज्जनका प्रश्न था।

'जो कुछ मेरे शरीरपर है, उसके सिवा मेरे पास दूसरा कोई सामान नहीं है।' भारतीय संन्यासीके उत्तरसे जागतिक ऐश्वर्यमें मग्न रहनेवाले अमेरिकनका आश्चर्य बढ़ गया। स्वामीजीका गेरुआ वस्त्र उनके गौरवर्ण, तप्तस्वर्णसदृश शरीरपर आन्दोलित था, मानो पाताल देशकी राजसिकतापर विजय पानेके लिये सत्यका अरुण केतन फहरा रहा हो। वे मन्द-मन्द मुसकरा रहे थे, ऐसा लगता था, मानो उनके हृदयकी करुणा नये विश्वका उद्धार करनेके लिये विकल हो गयी हो।

'आपके रुपये-पैसे कहाँ हैं?' सज्जनका दूसरा प्रश्न था।

'मैं अपने पास कुछ नहीं रखता। समस्त जड़-चेतनमें मेरी आत्माका रमण है। मैं अपने (आत्म) सम्बन्धियोंके प्रेमामृतसे जीवित रहता हूँ। भूख लगनेपर कोई रोटीका टुकड़ा दे देता है, तो प्यास लगनेपर कोई पानी पिला देता है। समस्त विश्व मेरा है। इस विश्वमें रमण करनेवाला सत्य ही मेरा प्राण-देवता है। कभी पेड़के नीचे रात कटती है, तो कभी आसमानके तारे गिनते-गिनते आँखें लग जाती हैं।' त्याग-मूर्ति रामने वेदान्त-तत्त्वका प्रतिपादन किया।

'पर यहाँ अमेरिकामें आपका परिचित कौन है?' स्वामीजीसे अमेरिकन महानुभावका यह तीसरा प्रश्न था।

(मुसकराते हुए बोले)—'आप। भाई! अमेरिकामें तो केवल मैं एक ही व्यक्तिको जानता हूँ। चाहे आप परिचित कह लें या मित्र अथवा साथीके नामसे पुकार लें, और वह व्यक्ति आप हैं।' महात्मा रामतीर्थने उनके कन्धेपर हाथ रख दिया। वे संन्यासीके स्पर्शसे धन्य हो गये। स्वामीजी उनके साथ जहाजसे उतर पड़े। नयी दुनियाकी धरतीने उनकी चरण-धूलिका स्पर्श किया, वह धन्य हो गयी।

'स्वामी रामतीर्थ हिमालयकी कन्दराओंसे उदय होनेवाले सूर्यके समान हैं। न अग्नि उनको जला सकती है, न अस्त्र-शस्त्र उनका अस्तित्व नष्ट कर सकते हैं। आनन्दाश्रु उनके नेत्रोंसे सदा छलकते रहते हैं। उनकी उपस्थितिमात्रसे हमें नवजीवन मिलता है।' अमेरिकन सज्जनके ये उद्‌गार थे भारतीय आत्ममानवके प्रति।

वेदान्तका काम

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती)

एक पण्डितजीके घरमें एक छोटा-सा बालक था, वह बड़ा चंचल था। जब चाहता, तब अँधेरे घरमें घुस जाता। आजकल जैसे बढ़िया-बढ़िया मकान होते हैं, वैसे तो घर नहीं थे। मिट्टीका घर था। कहीं साँप रहनेकी सम्भावना थी। कहीं बिच्छू होनेकी सम्भावना थी। वह चंचल बालक अँधेरे घरमें घुस जाता और कहीं किसी बिलमें हाथ डाल देता; कहीं किसी घड़ेमें हाथ डाल देता! कभी कहीं चूहा पकड़ने लगता इत्यादि-इत्यादि शरारत करता रहता। उस छोटे बालककी भलाईका ध्यान रखते हुए पण्डितजीने एक युक्ति ढूँढ़ निकाली। एक दिन उस बालकको समझाते हुए पण्डितजीने कहा—'बेटा! तुम अकेले अँधेरेमें मत जाया करो। उसमें एक 'हाऊ' रहता है। वह भूत बड़ा भयंकर है। तुमको अकेला देखकर पकड़ लेगा और खा जायगा।' अब इस बातको सुन करके वह बालक बहुत डर गया और उसने अँधेरे घरमें जाना बन्द कर दिया।

थोड़ा बड़ा होनेपर पण्डितजीने उसको गुरुकुलमें पढ़नेके लिये भेज दिया। वहाँ जाकर पढ़ा और बीस वर्षका होकर घर लौट आया। एक दिन पण्डितजीने उससे कहा—'बेटा! घरमें पुस्तक रखी है, वह उठाकर ले आओ।' वह बोला—'पिताजी! घरमें तो एक 'हाऊ' रहता है। मैं अकेला कैसे जा सकता हूँ? मुझे तो अँधेरे घरमें अकेले जानेमें डर लगता है।' पण्डितजीको तो याद भी नहीं था कि मैंने कभी इसको यह बताया है कि घरमें 'हाऊ' रहता है। अब पण्डितजी समझाने लगे—'बेटा! दरअसलमें कोई 'हाऊ' नहीं है। वह तो बचपनमें तुम शरारत करते थे, अकेले अँधेरेमें चले जाते थे और बिलमें, घड़ेमें हाथ डाल देते थे। तुम अँधेरेमें जाकर यह सब उत्पात न करो, इसके लिये मैंने तुमको यह बतलाया था कि घरमें एक बड़ा भयंकर भूत है।' बेटेने कहा—'पिताजी! अँधेरे घरमें अकेले जानेमें मेरा तो दिल काँपता है।' पण्डितजी समझायें और बेटा समझे ही नहीं।

कई दिन बीत गये। बेटेकी भलाईको ध्यानमें रखते हुए पण्डितजीने एक युक्तिकी संगति लगा ली। एक दिन पण्डितजीने अपने बेटेको बुलाकर अपने पास बैठाया और बड़े प्यारसे बोले—'देखो बेटा! मेरे पास एक ऐसा ताबीज है—यन्त्र है, जिसको हाथमें बाँध लेनेपर 'हाऊ' कुछ नहीं कर सकता है। आओ, मैं तुम्हारे हाथमें यह ताबीज बाँध दूँ, जिससे भूत तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ पायेगा और तुम निर्भय होकर अकेले ही अँधेरे घरमें जा सकोगे।' पण्डितजीने बेटेके हाथमें वह ताबीज बाँध दी।

कुछ दिनों बाद पण्डितजीने फिर कहा—'बेटा! घरमें पुस्तक रखी है, वह उठाकर ले आओ।' बेटा पुस्तक ले आया। पण्डितजीने दूसरी चीज मँगवायी। बेटा वह भी ले आया। फिर तीसरी चीज मँगवायी। बेटा वह भी ले आया। अब पण्डितजीने हाथमें रोशनी दे दी और कहा—'जाओ। इस दीपकके प्रकाशमें घरको भली-भाँति देखो।' लौटनेपर लड़केने कहा—'मैंने खूब अच्छी तरहसे घरको देखा, किंतु घरमें तो कोई 'हाऊ-वाऊ' नहीं है। बेकारमें ही मैं भूतसे डर रहा था। भयंकर भूतकी कल्पना ही मुझे भयभीत कर रही थी। वस्तुतः भूत है ही नहीं।'

पण्डितजी बोले—'बेटा! यह भूत-प्रेत कुछ नहीं होता है। सच तो यह है कि 'हाऊ' पहले भी नहीं था; बीचमें भी नहीं था; अब भी नहीं है और कभी आगे भी नहीं होगा। यह तो तुम बचपनमें अकेले अँधेरेमें नहीं जाओ और वहाँ जाकर अपनेको किसी बिच्छू-साँपादिसे डँसवा न लो, इसके लिये तुमको भूतका भय दिया था। अब तुम बड़े हो गये हो। अब तुम्हारे लिये साँप-बिच्छूको डँसनेका कोई डर नहीं है। तुम अकेले अँधेरेमें जा सको, इसके लिये भूत-प्रेतके भयको छुड़ानेके लिये यह ताबीज तुम्हारे हाथमें बाँधी है। **'हाऊ' के भयका अध्यारोप भी तुम्हारी भलाईके लिये किया था और अब भूत-भयका अपवाद भी तुम्हारे मंगलके लिये ही किया है।** तुम्हारी सुरक्षा-भलाईको ध्यानमें रखते हुए ही बचपनमें भूतप्रेतके भयका अध्यारोप किया और बड़प्पनमें उसका अपवाद किया है।'

नारायण! इस तरह वेदान्त अध्यारोप और अपवादके सिद्धान्तसे वस्तुका निरूपण करता है। यह भी बोलनेकी एक प्रणाली है। जब तुमने अपने-आपमें मनुष्यत्वका अध्यारोप कर लिया है कि 'हम यह हड्डी-मांस-चामके पुतले हैं', तब वेदान्तने कहा कि 'नहीं-नहीं, तुम यह शरीर नहीं हो। तुम तो कर्म करनेवाले हो। शरीर तो कर्म करनेका एक औजार है। तुम कर्ता हो। तुम संकल्प करनेवाले हो। तुम विचार करनेवाले हो। तुम इन सबके साक्षी अधिष्ठान-प्रकाशक आत्मा हो। तुम साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हो।' इस तरह—**'अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्चं प्रपञ्च्यते।'**

अध्यारोप और अपवादके द्वारा वेदान्त एक अध्यारोपको काटनेके लिये दूसरा अध्यारोप करता है। दूसरा अध्यारोप काटनेके लिये तीसरा अध्यारोप करता है। तीसरा अध्यारोप काटनेके लिये नितान्त अपवाद कर देता है—'नेति-नेति'—यह भी नहीं, यह भी नहीं। अध्यारोप माने अधि और आरोप। अधि माने अधिक। जो चीज जितनी हो, उससे ज्यादा। अधि माने ऊपर। आरोप माने थोप देना। अध्यारोप माने एकके ऊपर दूसरेको थोप देना। रस्सीके ऊपर साँपको थोप देना अथवा साँपकी कल्पना कर देना, पीतलको सोना समझा देना—इसका नाम अध्यारोप है। अपवाद माने उसी आरोपित वस्तुका तिरस्कार कर देना।

वेदान्तकी संगति यह है कि वह अपनेमें अविद्यासे अध्यारोपित, अज्ञानसे कल्पित जो कर्तापना-भोक्तापना-संसारीपना-परिच्छिन्नपना है, उसको महावाक्यके द्वारा निवृत्त करता है। वस्तुतः अपने शुद्ध ज्ञानस्वरूपमें दूसरी कोई वस्तु नहीं है। ज्ञानस्वरूप परमात्माके अतिरिक्त—आत्मदेवके अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु नहीं है। अतः विदित और अविदित—दोनोंका प्रतिषेध करके, दोनोंका जो वेत्ता है, उस आत्माको ब्रह्म बताकर समस्त कल्पना-जालका उच्छेद करनेके लिये वेदान्त होता है। महावाक्य-जन्यवृत्तिके द्वारा आत्मा प्रकाशित नहीं होता—ब्रह्म प्रकाशित नहीं होता। वेदान्तजन्य बोधका काम है—आत्मा और ब्रह्मको वृत्त्यारूढ़ करके वृत्तिमें जो अहं-अहं हो गया है, उसका निवारण करना। नारायण! वेदान्त आत्माको—ब्रह्मको प्रकाशित नहीं करता, बल्कि अध्यारोपको अपवादित करता है। रोशनीको दिखानेके लिये रोशनीकी जरूरत नहीं है। सबको दिखानेवाली रोशनी तो हम स्वयं हैं। हम स्वयं सबको जगमग-जगमग करनेवाले हैं।

बोध-कथा—

शरणागतिका फल

एक बकरी झाड़ीमें फँस जानेसे अपने झुंडसे अलग हो गयी और घर नहीं लौट पायी। सभी बकरियाँ चली गयीं। इस बकरीने सोचा कि आज मेरी मृत्यु निश्चित है। रातमें नाना प्रकारके जंगली जानवर घूमते हैं, जो मुझ निर्बल असहायको कहाँ छोड़ेंगे। ऐसा सोचते-सोचते वह एक तालाबके पास पहुँची, जहाँ जंगली जानवर पानी पीने आते थे। वहाँ उसे एक शेरका पंजा दिखायी दिया। उसने सोचा मैं अगर इस पंजेका आश्रय ले लूँ तो सम्भवतः बच जाऊँगी। ऐसा सोचकर वह वहीं बैठ गयी। जब भी कोई जंगली जानवर आकर उसे खानेका भय दिखाता, तो वह उसे शेरका पंजा दिखाकर कह देती—'देखते नहीं हो, मैंने जंगलके राजाकी शरण ले रखी है।' तब सभी डरकर चले जाते। अन्तमें शेर आ गया और उसने कहा—'ऐ बकरी! मैं तुम्हें खाऊँगा।' बकरीने कहा—'महाराज! आप तो जंगलके राजा हैं। आपके तो सभी शिकार हैं। मैं एक तुच्छ निर्बल जानवर हूँ और आपकी शरणमें बैठी हूँ। अबतक जो भी जानवर आये हैं, उनको मैंने यही कहा है कि मैं जंगलके महाराजकी शरणमें बैठी हूँ।' शेरने सोचा कि मेरे खानेके लिये तो और बहुत जानवर हैं, किंतु यह निरीह प्राणी तो मेरी ही शरणमें है। क्यों न मैं इसे अभयदान प्रदान करूँ। उसने एक हाथीको रोककर कहा—'ऐ हाथी! मेरा आदेश है कि तुम इस बकरीको अपनी पीठपर बिठाओ और जहाँ तुम किसी पेड़के नीचे रुकोगे, वहाँ यह उसकी डालीके पत्ते खा लेगी।' इस प्रकार बकरी निर्भय होकर जंगलमें विचरती; क्योंकि उसने जंगलके स्वामीकी शरण ले रखी थी। इसी प्रकार जिन्होंने संसारके स्वामीकी शरण ले ली, उनके लिये यह दुस्तर संसार-सागर गायके खुरसे बने गड्ढेमें स्थित जलके समान तुच्छ हो जाता है। [प्रेषक—श्रीगोविन्दरामजी शर्मा]

तेरी हँसी

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

हे मेरे प्राणाराम राम! तू बड़ा ही लीलामय है, खूब खेल खेलता है। मनमाना नाच भी नचाता है और अलग बैठा टुक-टुक देखता हुआ हँसा भी करता है। यह सृष्टि तेरे हास्यका ही तो विलास है, परंतु तेरा हँसना नित नये-नये रंग लाता है; तेरी एक हँसीमें सृष्टिका उदय होता है, दूसरीमें उसकी स्थिति होती है और तीसरीमें वह तेरे अन्दर पुनः विलीन हो जाती है। पर तू तीनों ही अवस्थाओंमें हँसता है। इतनी उधेड़-बुन हो जाती है, परंतु तेरी एकरसी हँसीमें कहीं अन्तर नहीं पड़ता। लोग तेरी हँसीके नाना अर्थ करते हैं; उनका वैसा करना अनुचित भी नहीं है; क्योंकि लोगोंको भिन्न-भिन्न रूप भासते ही हैं। यही तो तेरी हँसीकी विलक्षणता है, इसीमें तो तेरी मौजका अजब नजारा है। किसीका जन्म होता है, तू हँसता है; वह खाता-खेलता और रंग-रागमें मस्त रहता है, तू हँसता है; फिर हाथ फैलाकर जब वह सदाके लिये सो जाता है—क्रन्दनकी करुण-ध्वनिसे दिशाएँ रो उठती हैं, तू तब भी हँसता ही है। तेरी हास्यलीला अनादि और अनन्त है!

लोग तेरे इस हास्यकी थाह लेना चाहते हैं, अपने परिमित और विलास-विभ्रम-ग्रस्त विमोहयुक्त बुद्धिबलसे तेरी हँसीका रहस्य जानना चाहते हैं, वह बुद्धिका सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर होते-होते सर्वथा विलुप्त हो जाना नहीं तो क्या है? जलका जरा-सा नगण्य कण सब ओरसे परिपूर्ण पारावारहीन जलनिधिका अन्त जानना चाहता है, यह असम्भव भावना नहीं तो क्या है? जबतक वह अलग खड़ा देखेगा, तबतक तो पता लगेगा कैसे? और कहीं पता लगानेकी लगनमें अन्दर चला गया, तब तो उसकी अलग सत्ता ही नष्ट हो जायगी, फिर पता लगायेगा ही कौन? जो ढूँढ़ने गया था, वही खो गया! अतः हे महामहिम मुनि-मन-मोहन मायिक-मुकुट-मणि राम! मेरी समझसे तो तेरे इस हास्यका मर्म जाननेकी सामर्थ्य जगत्के किसी भी प्राणीमें नहीं है। हाँ, कोई तेरा खास प्रेमी तेरी कृपासे रहस्य समझ पाता होगा; परंतु उसका समझना-न-समझना हमारे लिये एक-सा है; क्योंकि वह फिर तुझसे अलग रहता ही नहीं—

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥

जो तेरी मधुर मुसकानपर मोहित होकर तेरी ओर दौड़ता है और तेरे समीप पहुँच जाता है, उसे तो तू अपनी गोदसे कभी नीचे उतारता नहीं और जो विषय-विमोहित हैं, उनको तेरे रहस्यका पता नहीं।

आश्चर्य है कि इसपर भी हम तेरी लीलाओंके रहस्योद्घाटनका दम भरते हैं और जो बात हमारी स्थूल बुद्धिमें नहीं जँचती, उसे तेरे लिये भी असम्भव मान बैठते हैं। हमारी इस बुद्धिपर—हमारे इस बाल-चापल्यपर तुझे दया तो आती ही होगी दयामय!

महर्षि वाल्मीकि, महर्षि वेदव्यास और गोसाईं तुलसीदासजी प्रभृति सन्तोंको धन्य है, जिनकी वाणीसे तूने दयाकर अपनी कुछ लीलाएँ जगत्को सुनायीं। तेरी इन लीलाओंके दिव्यालोकसे असंख्य प्राणियोंका तमोमय मार्ग प्रकाशित हो उठा, जिसके सहारे वे अनायास ही अपने गन्तव्य स्थानपर पहुँचकर सदाके लिये सुखी हो गये। परंतु तेरी ये लीलाएँ हैं बड़ी ही विचित्र, अद्भुत और मोहिनी, बड़े-बड़े तार्किक विद्वानोंकी बुद्धि इनकी मोहकतामें पड़कर चकरा जाती है। अवश्य ही जो लोग श्रद्धा-भक्तिपूर्वक बुद्धिका व्यर्थाभिमान छोड़कर तेरी शरण हो जाते हैं, उनके विवेक-चक्षुओंके सामने तेरी दुस्तर मायाका आवरण हट जाता है।

नाथ! तब तो ऐसा कर दे, जिससे प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक समय, प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक चेष्टामें तेरी नित्य अनन्त कृपाकी पूर्ण अखण्ड माधुरी मूरतिके दर्शन होते रहें और फिर वह पूर्ण कृपाविग्रह कभी आँखोंसे ओझल हो ही नहीं। सुना है, तेरी हँसीका रहस्य तभी जाना जा सकता है।

भगवान्‌के विधानका आदर करो

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

विधानमें आस्था उन्हीं प्राणियोंकी नहीं होती, जो बलके दुरुपयोगको ही जीवन मान लेते हैं। यद्यपि सबलसे सभी रक्षाकी आशा करते हैं; किंतु वे स्वयं निर्बलोंके प्रति बलका दुरुपयोग कर बैठते हैं। उसका परिणाम यह होता है कि सबल निर्बल हो जाता है और निर्बल सबल। जिसका अधिकार किसीकी उत्पत्तिमें नहीं है, वह किसीका विनाश भी नहीं कर सकता, अपितु बलके दुरुपयोगसे वह निर्बलताका आह्वान करता है, जो भूल है। मंगलमय विधान किसीको निर्बल देखना नहीं चाहता, पर जब मानव मिली हुई स्वाधीनताका दुरुपयोग करता है, तब दुरुपयोगसे बचानेके लिये उसे निर्बल करना पड़ता है। इसमें भी कितना हित निहित है! पर उसे वे ही देख पाते हैं, जिन्होंने विधानका आदर किया है।

जो हो रहा है, वह सभीके लिये हितकर है, पर जो कह रहे हैं, उसीपर विचार करना है। विवेक-विरोधी सम्बन्ध, विश्वास तथा कर्म उस विधानका अनादर है। उसीका परिणाम है—अकर्तव्य, आसक्ति, असाधन आदिकी उत्पत्ति, जो विनाशका मूल है। विवेक-विरोधी कर्मके त्यागमें कर्तव्यपरायणता, विवेक-विरोधी सम्बन्धके त्यागमें असंगता एवं विवेक-विरोधी विश्वासके त्यागमें ही उसकी शरणागति स्वत: प्राप्त होती है, जिसे देखा नहीं है। विधानका आदर करनेपर कर्तव्यपरायणता, असंगता एवं शरणागति स्वत: प्राप्त होती है। कर्तव्यपरायणता जगत्‌के लिये, असंगता अपने लिये और शरणागति प्रभुके लिये उपयोगी होती है। इस दृष्टिसे मंगलमय विधानके आदरमें ही मानव-जीवनकी पूर्णता निहित है।

जो विधानका निर्माता है, न जाने उसमें कितनी करुणा है। भिन्नतामें साक्षात् एकताका दर्शन होनेसे भिन्नता एकमात्र सृष्टिकी शोभा है, अन्य कुछ नहीं। अनेकतामें एकताका दर्शन होनेसे रसकी वृद्धि होती है और एकतामें एकताका अनुभव करनेसे केवल दु:खकी निवृत्ति होती है। दु:खकी निवृत्ति वास्तविक माँगका एक अंगमात्र है, सर्वांग नहीं।

दु:ख-निवृत्तिके साथ-साथ अनन्त नित्य चिन्मय तथा नित्य नव रसकी भी माँग है। असंगता प्राप्त होनेपर दु:ख-निवृत्ति, शान्ति तथा स्वाधीनताकी प्राप्ति होती है; किंतु स्वाधीनताका आश्रय पाकर अहंभाव जीवित रहता है, कारण कि जो दु:ख, अशान्ति, पराधीनता अनुभव करता था, वही दु:ख-निवृत्ति, शान्ति एवं स्वाधीनताका अनुभव करता है। इस दृष्टिसे असंगता अपने लिये उपयोगी है। पर जिसके मंगलमय विधानसे विवेक-विरोधी सम्बन्धके त्यागकी सामर्थ्य मिलती है, उसके लिये जीवन शरणागतिसे ही उपयोगी होता है। शरणागति अहंको शरण्यकी अगाध प्रियतामें परिणत करती है।

विवेक-विरोधी कर्मके त्यागमें ही कर्तव्यपरायणताकी अभिव्यक्ति होती है, जिससे जीवन जगत्‌के लिये उपयोगी होता है। विवेकरूप प्रकाश अनन्तके मंगलमय विधानका प्रतीक है। विधानका आदर करनेपर विवेक-विरोधी कर्म, सम्बन्ध और विश्वासका अन्त स्वत: हो जाता है तथा कर्तव्यपरायणता, असंगता एवं शरणागतिकी अभिव्यक्ति अपने-आप होती है, जिसमें मानवका लेशमात्र भी प्रयास अपेक्षित नहीं है। मानवका प्रयास केवल प्राप्तविवेकके आदरमें है अर्थात् जाने हुए असत्‌के त्यागमें है। सत्‌के संग और सर्वतोमुखी विकासके लिये साधनकी अभिव्यक्ति मंगलमय विधानसे स्वत: होती है। इस दृष्टिसे विधानके आदरमें ही मानव-जीवनकी पूर्णता निहित है।

साधकोंके प्रति—

आदर्श बहू

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

एक सेठ था। उसके सात बेटे थे। उन सातोंमें छ:का विवाह हो चुका था। अब सातवें बेटेका विवाह हुआ। उसका विवाह जिस लड़कीसे हुआ, वह अच्छे समझदार माँ-बापकी बेटी थी। माँ-बापने उसको अच्छी शिक्षा दी हुई थी। उस घरमें सबका भाव अच्छा था। सात भाई होनेपर भी सभी एक साथ रहते थे। एक विलक्षण बात यह थी कि स्त्रियाँ ही घरकी रसोई बनाती थीं। कोई रसोइया नहीं था। स्त्रियाँ स्वयं रसोई बनाती हैं तो वे पति-पुत्र, सास-ससुर आदिको प्रेमसे भोजन कराती हैं। परंतु रसोइया रसोई बनाता है तो वह मजदूरी करता है। दूसरा न खाये अथवा कम खाये तो सोचता है कि रोटी थोड़ी बनानी पड़ेगी, आफत मिटी!

घरमें छ: जेठानियाँ थीं और सुबह-शाम बारी-बारीसे रसोई बनाया करती थीं। हरेक जेठानीकी तीन दिनमें बारी आया करती थी। परंतु उनमें खटपट रहती थी। कोई बीमार हो जाय तो दूसरी कहती कि मेरी बारीमें तूने रसोई नहीं बनायी, फिर तेरी बारीमें मैं क्यों बनाऊँ? छोटी बहू आयी तो उसके भीतर बहुत उत्साह था। वह एक दिन स्नान करके, शुद्ध वस्त्र पहनकर पहले ही रसोईमें जा बैठी। जेठानीने देखा तो कहा कि 'बहू! तू रसोई क्यों बनाती है? रसोई बनानेके लिये हम कम हैं क्या?' फिर भी छोटी बहूने बड़े प्रेमसे रसोई बनायी और सबको भोजन कराया। सब बड़े प्रसन्न हुए कि आज छोटी बहूने बहुत बढ़िया रसोई बनायी!

सभी भाइयोंके अलग-अलग कमरे थे। दिनमें सास छोटी बहूके कमरेमें गयी और उससे कहा कि 'बहू! तू सबसे छोटी है, इसलिये सब तेरेसे लाड़-प्यार रखते हैं। तू रसोई क्यों बनाती है? तेरी छ: जेठानियाँ हैं।' छोटी बहू बोली—'माँजी! कोई भूखा अतिथि घर आ जाय तो उसको आप अन्न क्यों देते हो?' सास बोली—'बहू! इससे बड़ा पुण्य होता है। घरमें कोई भूखा आ जाय तो उसको भोजन कराना गृहस्थका खास धर्म है। उसको तृप्ति होती है, सुख मिलता है तो देनेवालेको पुण्य होता है।' छोटी बहू बोली—'दूसरोंको भोजन करानेसे पुण्य होता है तो क्या घरवालोंको भोजन करानेसे पाप होता है?' मकान आपका, अन्न आपका, बर्तन आपके, सब चीजें आपकी हैं। मैं थोड़ी-सी मेहनत करके रसोई बनाकर खिलाऊँ तो मेरा पुण्य होगा कि नहीं होगा? सब भोजन करके तृप्त होंगे, प्रसन्न होंगे तो इससे कितना लाभ होगा! इसलिये माँजी, आप रसोई मेरेको बनाने दो। मैं बैठी-बैठी करूँगी भी क्या? कुछ मेहनत करूँगी तो शरीर भी ठीक रहेगा, स्वास्थ्य ठीक रहेगा। सासने ये बातें सुनीं तो मनमें सोचा कि बहू बात ठीक कहती है! हम इसको सबसे छोटी समझते हैं, पर इसकी बुद्धि बहुत अच्छी है!

दूसरे दिन सुबह जल्दी ही सास रसोई बनाने बैठ गयी। बहुओंने देखा तो बोलीं—'माँजी! यह आप क्या करती हो? रसोई बनानेवाली बहुत हैं। आप परिश्रम क्यों करो?' सास बोली—'तुम्हारी अवस्था छोटी है, पर मेरी अवस्था बड़ी है। मेरेको जल्दी मरना है। मैं अभी पुण्य नहीं करूँगी, तो फिर कब करूँगी?' बहुएँ बोलीं—'इसमें पुण्य क्या है? यह तो घरका काम है!' सास बोली—'घरका काम करनेसे पाप होता है क्या? जब भूखे व्यक्तियोंको, साधुओंको, ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे पुण्य होता है तो क्या घरवालोंको भोजन करानेसे पाप होता है? उलटे इसका तो व्यक्तिगत पुण्य होता है। घरकी चीज सब घरवालोंकी होती है, इसलिये दान-पुण्य करनेसे सबको पुण्य होता है, परंतु खुद मेहनत करके रसोई बनायी जाय तो अकेले रसोई बनानेवालेको पुण्य होता है। हम बड़े-बूढ़े अभी पुण्य नहीं करेंगे तो फिर कब करेंगे?' सासकी बातें सुनकर सब बहुओंके भीतर उत्साह हुआ कि इस बातका हमने खयाल ही नहीं किया कि घरका काम करनेसे, भोजन बनाकर सबको खिलानेसे भी पुण्य होता है! यह युक्ति बहुत बढ़िया है! अब जो बहू पहले जग जाय, वही पहले रसोई बनाने बैठ जाय। आपसमें खटपट होने

लगी। एक कहती कि रसोई मैं बनाऊँगी, दूसरी कहती कि मैं बनाऊँगी! सेठके पास यह बात पहुँची तो उसने कहा कि सब अपनी बारी बाँध लो और अपनी-अपनी बारीमें रसोई बनाओ।

पहले जब 'रसोई तू बना, तू बना'—यह भाव था, तब छः बारी बँधी थी। अब 'मैं बनाऊँ' 'मैं बनाऊँ'—यह भाव हुआ तो आठ बारी बँध गयी। दो और बढ़ गये—सास और छोटी बहू। काम करनेमें 'तू कर, तू कर'—इससे काम बढ़ जाता है और आदमी कम हो जाते हैं, पर 'मैं करूँ, मैं करूँ'—इससे काम हलका हो जाता है और आदमी बढ़ जाते हैं। धनी आदमी घरके काम-धन्धेके लिये नौकर रखते हैं। नौकर कोई साधु-संन्यासी थोड़े ही होता है। उसका भी अपना कुटुम्ब होता है। वह अपने घरका भी काम करता है और आपके घरका भी काम करके पैसे ले जाता है। परंतु आप अपने घरका भी काम नहीं कर सकते और बड़े कहलाते हो! आप बड़े हुए कि नौकर बड़ा हुआ?

छोटी बहूने सोचा कि तब तो चौथे दिन बारी आती है, क्या किया जाय? घरमें आटा पीसनेकी पुरानी चक्की पड़ी थी। वह उसको अपने कमरेमें ले आयी और आटा पीसना शुरू कर दिया। मशीनकी चक्कीका आटा गरम होता है और गरम-गरम ही बोरीमें भर देनेसे जल जाता है, जिससे उसकी रोटी स्वादिष्ट नहीं होती। परंतु हाथसे पीसा गया आटा ठण्डा होता है और उसकी रोटी स्वादिष्ट होती है। छोटी बहूने हाथसे आटा पीसकर उसीसे रोटी बनायी, तो सब कहने लगे कि आज तो फुलकेका जायका बड़ा विलक्षण है!

सासने छोटी बहूके पास जाकर कहा कि 'बहू! तू आटा क्यों पीसती है? अपने पास पैसोंकी कमी नहीं है। भगवान्‌ने बहुत दिया है!' बहूने कहा—'माँजी! भले ही पैसा बहुत हो, पर आटा तो रोजाना मैं ही पीसूँगी। हाथसे आटा पीसनेसे शरीर ठीक रहता है। व्यायाम स्वतः हो जाता है। बीमारी नहीं आती। वैद्यों-डॉक्टरोंके चक्कर नहीं काटने पड़ते। दूसरी बात, रसोई बनानेसे भी ज्यादा पुण्य आटा पीसनेका है। रसोई चाहे कोई बनाये, आटा तो मेरा पीसा हुआ ही सब खायेंगे!' सासने और जेठानियोंने ये बातें सुनीं तो विचार किया कि छोटी बहू ठीक बात कहती है। उन्होंने अपने-अपने पतियोंसे कहा कि घरमें चक्की ले आओ, हम सब आटा पीसेंगी। सब चक्की ले आये। सभी चक्कीमें रोजाना दो-ढाई सेर आटा पीसने लगीं। आटा अधिक हो गया। अब अधिक आटेका क्या करें? छोटी बहूने कहा कि अपनी दूकानमें आटेकी बिक्री कर दो। छोटी बहूकी बात सबने मान ली कि यह जो कहती है, ठीक कहती है।

अब छोटी बहू विचार करने लगी कि आटा पीसनेका काम तो मेरे हाथसे गया, अब क्या करूँ? घरमें कुआँ था। रोजाना सुबह एक नौकर पानी भरनेके लिये आता था। छोटी बहूने सुबह जल्दी उठकर स्नान करके कुएँसे सब बर्तनोंमें पानी भर दिया। नौकर आया तो उसने देखा कि सब बर्तनोंमें पानी भरा हुआ है। वह बैठ गया। सेठ आया तो बोला कि 'बैठा क्यों है? पानी क्यों नहीं भरता?' नौकर बोला—'आप देखो, सब पानी पहलेसे ही भरा हुआ है, मैं क्या करूँ?' सेठ बोला कि पता लगाओ, पानी किसने भरा? सासने छोटी बहूके पास जाकर कहा—'बहू! पानी तूने भरा?' बहू बोली—'माँजी! आप चुप रहो, बोलो मत! आपके बोलनेसे मेरी कमाई चली जाती है! आपने वैशाख-माहात्म्य सुना है कि नहीं? वैशाखके महीनेमें पानी पिलानेका बड़ा माहात्म्य है। पानी पिलानेका जितना पुण्य है, उतना अन्न देनेका नहीं है; क्योंकि अन्न तो दिनमें एक-दो बार खाते हैं, पर पानी दिनमें कई बार पीते हैं। पानीसे स्नान करते हैं, कुल्ला करते हैं, हाथ-पैर धोते हैं। पानी ज्यादा काममें आता है।'

दूसरे दिन सास जल्दी उठकर कुएँपर चली गयी और पानी खींचने लगी। दूसरी बहुओंने देखा तो बोलीं—'माँजी! यह आप क्या करती हो? लोगोंमें हमारा मुँह काला होगा कि घरमें इतनी बहुएँ बैठी हैं और सास पानी भरती है।' सास बोली—'बूढ़ोंको तो जल्दी मरना है, इसलिये उनको पहले काम करके पुण्य कमाना चाहिये। तुमलोग तो पीछे भी कर लोगी।' अब

सब बहुओंने भी पानी भरना शुरू कर दिया। सेठने देखा तो कहा कि 'नौकर निकम्मा बैठा है, इसको छुट्टी दे दो।' यह बात छोटी बहूने सुनी तो वह सासके पास गयी और बोली—'मेरी प्रार्थना सुनो, पिताजीसे कहो कि नौकरको छुट्टी न दें। यह गृहस्थी आदमी है। बेचारेकी कमाई होती है। इसको छुट्टी न देकर दूसरे काममें लगा दें।' इस बातका सासपर असर पड़ा कि छोटी बहूका कितना अच्छा भाव है! यह कितनी समझदार है!

अब छोटी बहूने विचार किया कि रसोई भी सब बनाने लगीं, आटा भी सब पीसने लगीं, पानी भी सब भरने लगीं, अब मैं क्या करूँ? घरमें जूठे बर्तन माँजनेके लिये एक नौकरानी आया करती थी। छोटी बहू राख लेकर कोनेमें बैठ गयी और अपने सब बर्तन माँज दिये। नौकरानी दूर बैठी थी। सासने देखा तो बोली—'बहू! विचार तो कर। बर्तन माँजनेसे तेरा गहना घिस जायगा, कपड़े खराब हो जायँगे, फायदा क्या होगा?' छोटी बहू बोली—'माँजी! ऐसी बात नहीं है। आप चुप रहो!' सास बोली—'बता तो सही, क्या बात है?' बहू बोली—'माँजी! जूठन उठानेका बड़ा माहात्म्य है। आपने महाभारतमें कथा नहीं सुनी? पाण्डवोंने यज्ञ किया तो सबसे पहले भगवान् श्रीकृष्णका पूजन हुआ। उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णने सबकी जूठी पत्तलें उठानेका काम किया। जितना छोटा काम होता है, उतना ही उसको करनेका ज्यादा माहात्म्य होता है। अगर जूठन उठानेका ज्यादा माहात्म्य नहीं होता, तो भगवान् यह काम क्यों करते?'

दूसरे दिन सास बर्तन माँजनेके लिये बैठ गयी तो छोटी बहूने कहा—'माँजी! मेरी बात सुनो। इस थाली-कटोरी-गिलासपर तो मेरा हक लगता है; क्योंकि ये मेरे पतिदेवके हैं। अत: इनको मैं माँजूँगी।' सास बोली—'जा, तेरा पति पीछे है, मेरा बेटा पहले है, इसलिये मैं माँजूँगी।' इस तरह बर्तन माँजनेके लिये खटपट होने लगी। आखिर सब बहुओंने बर्तन माँजने शुरू कर दिये।

छोटी बहू विचार करने लगी कि अब मैं क्या काम करूँ? सुबह रोजाना झाड़ू लगानेके लिये नौकर आया करता था। छोटी बहूने सुबह जल्दी उठकर सब जगह झाड़ू लगा दिया। नौकरने आकर देखा कि सब जगह झाड़ू लगा हुआ है, तो वह बैठ गया। सास छोटी बहूके पास गयी और बोली कि 'झाड़ू तूने लगाया है क्या?' छोटी बहू बोली—'माँजी! आप चुप रहो, बोलो मत। आप बोलती हो तो मेरे हाथसे काम चला जाता है!' सासने कहा—'झाड़ू देनेका काम तो नौकरका है, तू झाड़ू क्यों देती है?' छोटी बहूने कहा—'माँजी! आपने रामायण नहीं सुनी क्या? वनमें बड़े-बड़े ऋषि-मुनि रहते थे, पर भगवान् उनकी कुटियामें न जाकर पहले शबरीकी कुटियामें गये। कारण क्या था? शबरी रोजाना रातमें झाड़ू देती थी, पम्पासरका रास्ता साफ करती थी, जिससे ऋषि-मुनियोंके पैरमें कंकड़ न चुभें। इसलिये इस सेवाका बड़ा माहात्म्य है।' सासने देखा कि यह छोटी बहू सबको लूट लेगी! यह सबका पुण्य अकेले ले लेती है। अब सासने और सब बहुओंने झाड़ू लगाना शुरू कर दिया।

जिस घरमें सबका आपसमें प्रेम होता है, वहाँ लक्ष्मी बढ़ती है। जिस घरमें कलह होता है, वहाँ निर्धनता आ जाती है।

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥

(मानस, सुन्दर० ४१।३)

सेठकी दूकानमें अधिक धन पैदा होने लगा। सेठने सोचा कि स्त्रियोंके पास भी अधिक धन आना चाहिये। उसने घरकी सब स्त्रियोंके लिये गहने बनवा दिये। गहना स्त्रियोंका धन होता है, जिसमें पतिका भी हक नहीं लगता। अब छोटी बहू ससुरसे मिले गहने लेकर बड़ी जेठानीके पास गयी और बोली कि 'आपके लड़का-लड़की हैं। उनका विवाह करोगी तो गहना बनवाना पड़ेगा। मेरे तो अभी कोई लड़का-लड़की है नहीं। इसलिये इन गहनोंका मैं क्या करूँगी? मेरे माता-पिताने मेरेको खूब गहने दिये हैं, वे सब मेरे पास तिजोरीमें पड़े हैं।' सासने देखा तो छोटी बहूके पास जाकर बोली—'बहू! यह तुम क्या करती हो? तेरे ससुरने सबको गहने दिये हैं।' छोटी बहू बोली—'माँजी! आप चुप रहा

करो। आपको कोई बात कहना तो गाँवमें हल्ला करना है! काम-धन्धा करनेसे पुण्य होता है तो क्या दान करनेसे पाप होता है? वस्तु देनेका तो बड़ा पुण्य होता है!' सासको बहूकी बात लग गयी। वह सेठके पास गयी और बोली—'आपके नौकरोंको मैं धोती-साड़ी दूँगी।' सेठ बहुत राजी हुआ कि पहले नौकरोंको कुछ देते थे तो यह लड़ पड़ती थी, पर अब कहती है कि मैं दूँगी! अब सास भी दूसरोंको वस्तुएँ देने लगी, बहुएँ भी वस्तुएँ देने लगीं। घरमें वस्तुएँ हो गयीं ज्यादा और आदमी हो गये कम! पुण्यके दो ही काम हैं—काम-धन्धा खुद करना और वस्तुएँ दूसरोंको देना। ये दो काम होने लगें तो घरमें खटपट मिट जाय, शान्ति हो जाय। दूसरे लोग भी सोचते हैं कि कन्या देनी हो तो ऐसे घरमें दो, जिससे वह सुख पाये। कन्या लेनी भी हो तो ऐसे घरकी लो, जिससे हमारे घरमें भी सुख-शान्ति रहे। साधु भी ऐसे घरोंकी भिक्षा लेना चाहते हैं।

गीतामें कहा है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

(३।२१)

'श्रेष्ठ मनुष्य जो-जो आचरण करता है, दूसरे मनुष्य वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है, दूसरे मनुष्य उसीके अनुसार आचरण करते हैं।'

इस श्लोकमें श्रेष्ठ मनुष्यके आचरणके लिये तो पाँच पद आये हैं—'**यत्**'-'**यत्**', '**तत्**'-'**तत्**' तथा '**एव**', पर प्रमाण (वचन)-के लिये केवल दो पद आये हैं—'**यत्**' और '**तत्**'। इससे यह तात्पर्य निकलता है कि समाजपर मनुष्यके आचरणोंका असर पाँच गुना पड़ता है और वचनोंका असर दो गुना पड़ता है। छोटी बहूने आचरण किया, केवल व्याख्यान नहीं दिया। इसलिये उसका असर पूरे घरपर पड़ा, जिससे पूरे घरका सुधार हो गया। इतना ही नहीं, पड़ोसियोंपर भी उसका अच्छा असर पड़ा, जिससे उनके घर भी सुधर गये। एक घरका सुधार होनेसे अनेक घरोंका सुधार हो गया!

ईश्वर कहाँ ?

(श्रीरूपचन्दजी शर्मा)

एक राजा था। सोते समय उसके मनमें विचार आया—ईश्वर कौन है? वह कहाँ रहता है? उसका काम क्या है? दूसरे दिन राजाने विद्वानोंसे अपने प्रश्नोंका उत्तर पूछा। एक विद्वान्‌ने सोचा—ईश्वर तो आत्माकी अनुभूति है। उसे न देख सकते हैं, न छू सकते हैं। समस्त ब्रह्माण्ड उसका कर्मक्षेत्र है। सब जगह उसका निवास है। उसने राजासे कहा—'महाराज! आपके इन साधारण प्रश्नोंका उत्तर कोई अशिक्षित मूर्ख व्यक्ति भी दे सकता है।'

राजाके मन्त्रीने घास छीलनेवाले एक ग्रामीण मूर्ख व्यक्तिको बुलाया। राजाने उससे उपर्युक्त प्रश्न पूछे। प्रश्न सुनकर उसने एक बाल्टी दूधकी मँगायी और दूधको लकड़ीके डंडेसे मथने लगा।

राजाने कहा—'अरे मूर्ख! यह क्या कर रहा है? मेरे प्रश्नोंका उत्तर दे।'

घसियारा बोला—'महाराज! लोग कहते हैं—दूधमें घी होता है। वही खोज रहा हूँ।'

राजाने कहा—'अरे मूर्ख! घी ऐसे नहीं निकलता, पहले दूधको पकाना पड़ता है, फिर दही बनाया जाता है, दहीको मथा जाता है। उससे मक्खन निकाला जाता है, फिर मक्खनको पकाकर घी बनता है।'

घसियारेने कहा—'यही आपके प्रश्नोंका उत्तर है।' जैसे दूधमें घी व्याप्त है, पर दिखायी नहीं पड़ता। ठीक, उसी तरह ईश्वर संसारके कण-कणमें व्याप्त है। उसे प्राप्त करनेके लिये चिन्तन-मनन और साधनारूपी यन्त्रोंकी जरूरत है।' राजाको उत्तर मिल गया।

सब घट मेरा सांइया, सूनी सेज न कोय।
बलिहारी वा घटकी, जो घट परगट होय॥

(कबीर)

ढूँढ़ा सब जहाँमें, पाया पता तेरा नहीं।
जब पता तेरा लगा, तो अब पता मेरा नहीं॥

मेरे राम एवं रामकथा

(डॉ० श्रीआदित्यजी शुक्ल)

'नाना भाँति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा॥' अर्थात् इस संसारमें श्रीरामके अनेक अवतार हुए हैं और करोड़ों रामायणोंकी रचना हुई है। आज भी सैकड़ों रामायण उपलब्ध हैं और हर व्यक्तिके अपने-अपने राम हैं। वे अपने स्वभाव, अपने संस्कार, अपनी रुचि एवं अपनी आवश्यकताके अनुसार अपने रामको गढ़ते हैं और उनसे वैसा ही प्रेम-व्यवहार करते हैं। जिनकी जैसी भावना होती है, प्रभुकी मूर्ति उन्हें वैसी ही दिखायी देती है; ***'जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥'***, यही कारण है कि भगवान् शंकर, महर्षि वाल्मीकि एवं गोस्वामी तुलसीदासके राम अलग-अलग हैं। भगवान् शंकरके राम उनके आराध्य, इष्ट एवं जगदीश हैं, वाल्मीकिके राम राजाराम हैं और तुलसीके राम उनके मर्यादापुरुषोत्तम स्वामी हैं।

श्रीराम सर्वव्याप्त हैं। त्रेतायुगसे कलियुगतक यदि समाजमें कोई समान रूपसे विद्यमान है, तो वे केवल 'श्रीराम' हैं। कला, साहित्य, संगीत, संस्कृति, परम्परा एवं जीवनके हर क्षेत्रमें राम अपनी सम्पूर्ण श्रेष्ठताके साथ न केवल विद्यमान हैं, बल्कि दिन-प्रतिदिन व्यापक होते जा रहे हैं। कवि, साहित्यकार एवं कलाकारोंने रामको हर युगमें अपनी कला एवं साधनाका माध्यम बनाकर उनके यशके बलपर स्वयंको समृद्ध किया है। श्रीराम जन-जनमें समाये हुए हैं। हमारे जन्ममें गाये जानेवाले 'सोहर' से लेकर अन्तिम यात्राके 'श्रीराम नाम सत्य' तक उनसे हमारा नाता है।

अपने-अपने राम

इस संसारमें श्रीरामको माननेवाले प्रायः चार प्रकारके लोग हैं। पहले प्रकारके लोग वे हैं, जिन्हें श्रीरामकी शक्ति एवं सामर्थ्यपर श्रद्धा एवं विश्वास है। वे उन्हें सर्वगुणसम्पन्न 'नर' मानते हैं और स्वयंके जीवनमें उनके गुणोंको यथासम्भव आत्मसात् करनेका प्रयास करते हैं। दूसरे प्रकारके लोग श्रीरामपर श्रद्धा तो रखते हैं, साथ ही उनसे प्रेम भी करते हैं। इतना प्रेम कि उनके लिये श्रीराम ***'मोरें तुम्ह प्रभु गुरु पितु माता'*** अर्थात् माता, पिता, गुरु, स्वामी, सखा सब हैं। जहाँ 'श्रद्धा एवं प्रेम' एक साथ हों, वहीं 'भक्ति' है। श्रीरामपर श्रद्धा, प्रेम एवं भक्तिके कारण भक्त उन्हें सर्वशक्तिमान् 'नारायण' मानते हैं और अपने मन-मन्दिरमें बसाकर उनकी पूजा, अर्चना एवं आराधना करते हैं। श्रीरामको माननेवाले तीसरे प्रकारके लोगोंके मनमें न तो 'श्रद्धा' होती है और न ही 'भक्ति'। इनके मनमें हमेशा द्वन्द्व रहता है। श्रीरामको वे अपने सुविधानुसार कभी 'नर' तो कभी 'नारायण' मान लेते हैं। सीताजीकी अग्निपरीक्षा एवं परित्यागकी घटनापर उनका तर्क होता है कि एक श्रेष्ठ 'नर' होकर श्रीराम अपनी पत्नीके साथ ऐसा व्यवहार कैसे कर सकते हैं? इसी तरह 'बाली' वधपर चर्चा करते हुए वे कहते हैं कि श्रीराम 'नारायण' होकर किसीको छुपकर कैसे मार सकते हैं? इस तरह श्रीरामके प्रति इनका दृष्टिकोण अपने तर्कपर आधारित होता है। इस संसारमें चौथे प्रकारके भी कुछ लोग हैं, जिन्हें श्रीरामकी शक्ति, सामर्थ्य एवं देवत्वपर 'श्रद्धा' भी है और विश्वास भी, मगर वे अपने स्वार्थ, स्वभाव, प्रवृत्ति एवं प्रारब्धके कारण उन्हें स्वीकार नहीं कर पाते। ऐसे लोग रावणके समान होते हैं, श्रीराम स्वयं ईश्वर हैं, यह जाननेके बाद भी वे मन, वचन एवं कर्मसे दृढ़ होकर कहते हैं कि ***'होइहि भजनु न तामस देहा'*** अर्थात् इस तामस शरीरसे भजन नहीं होगा।

इतना सब कहनेके बाद अब आपको 'मेरे राम'-के विषयमें बतानेकी इच्छा बलवती हो रही है। सत्य, प्रेम, करुणा, त्याग, धर्म एवं मर्यादा-जैसे दिव्य गुणोंसे सुशोभित एक नरश्रेष्ठ। जैसे नदियोंमें गंगाजी, धेनुओंमें कामधेनु, पक्षियोंमें गरुड़जी, सर्पोंमें शेषनाग, पत्थरोंमें पारस एवं चिन्तामणि, वृक्षोंमें कल्पवृक्ष, रसोंमें अमृत तथा लोकोंमें वैकुण्ठ है, वैसे ही मेरे राम पुरुषोंमें अद्वितीय मर्यादापुरुषोत्तम हैं। 'मेरे राम मनुष्यतामें

शत-प्रतिशत हैं। वे मनुष्यताके मापदण्ड हैं। उनके गुणोंसे तुलना करके यह जाना जा सकता है कि हम कितने प्रतिशत मनुष्य हैं। श्रीरामके गुणोंसे दूरी वस्तुतः मनुष्यतासे हमारी दूरी है।' मेरे मनमें श्रीरामके प्रति सहज 'श्रद्धा' है। मेरे राम 'नर'-के रूपमें अवतार लेते हैं और एक आम आदमी बनकर आदर्श एवं मर्यादित जीवन जीते हुए हम सबको 'नारायण' बनकर दिखाते हैं। इसलिये उनके प्रति मेरे मनमें अटूट भक्ति भी है। यही श्रद्धा एवं भक्ति मुझे विश्वास दिलाती है कि यदि हम श्रीरामको आदर्श मानकर अपने गुणों एवं विशेषताओंका चैतन्य होकर प्रयोग करें, तो 'नरसे नारायण' बनना हमारे लिये सम्भव है।

मनुष्यकी पात्रता

किसी कार्य, पद या सम्मानके लिये योग्य होनेकी अवस्था या भावको पात्रता (Eligibility) कहते हैं। जैसे एक कर्मचारीके रूपमें हमारी पात्रता संस्थानके प्रमुख बननेकी है, एक नागरिकके रूपमें हमारी पात्रता देशके राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री बननेकी है, इसी तरह एक मनुष्यके रूपमें हमारी पात्रता नरसे नारायण बननेकी है। संसारमें हर मनुष्यकी मूलभूत पात्रता एक समान होती है। लेकिन उसे अर्जित करनेके लिये आवश्यक योग्यता सबमें भिन्न-भिन्न हो सकती है। यदि हम शिक्षा, संस्कार, साधना, स्वाध्याय एवं महापुरुषोंके जीवनसे प्रेरणा लेकर आवश्यक योग्यता अर्जित कर लें, तो हम वह सब प्राप्त कर सकते हैं, जिसके हम अधिकारी हैं। नरसे नारायण बनना मनुष्य देहकी परम पात्रता है। दुर्भाग्य है कि इस सत्य एवं स्वयंके सामर्थ्यसे अनभिज्ञ होनेके कारण ही हम पूरे जीवनमें एक श्रेष्ठ मनुष्य बन पानेमें भी असमर्थ हैं।

मेरे राममें ऐसे अनेक गुण प्रचुर मात्रामें विद्यमान हैं, जिनका उपयोग करके वे मनुष्यके रूपमें अपनी सर्वश्रेष्ठ पात्रता अर्जित करते हुए नरसे नारायण बनते हैं। एक आम आदमी बनकर आदर्श जीवन जीनेके लिये जो गुण, नियम एवं मर्यादाकी आवश्यकता होती है, उनके संग्रह एवं सामंजस्यका नाम श्रीराम है। इसीलिये आज भी व्यक्ति अपने हर रिश्तेमें श्रीरामको चाहता है। हर माता-पिता चाहते हैं कि उनका पुत्र श्रीरामके जैसा आज्ञाकारी हो, हर पत्नी चाहती है कि उसका पति श्रीरामकी तरह चरित्रवान् हो, हर भाई चाहता है कि उसका भाई श्रीरामकी तरह उसका संबल हो, हर मित्र चाहता है उसका मित्र श्रीराम-जैसा मित्रधर्म निभाने-वाला हो, हर सेवक चाहता है कि उसके स्वामी श्रीराम-जैसे दयालु एवं कृपालु हों और हर नागरिक चाहता है कि उसके देशमें रामराज्य हो एवं उसके मुखिया श्रीरामकी तरह ही नैतिक, मर्यादित, ईमानदार एवं न्यायप्रिय हों। इस तरह हर व्यक्ति अपने जीवनमें रामको चाहता है, मगर आजके दौरमें राम किसीको मिलते नहीं हैं। इस स्थितिमें यदि हम अपनी पात्रताको ध्यानमें रखकर, अपने गुणोंके बलपर स्वयं किसीके लिये राम बनना शुरू कर दें, तो सबको अपना-अपना राम मिल जायगा, फिर इस संसारको राममय होते देर नहीं लगेगी।

श्रीराम एवं रामकथा

रामकथा कहने एवं सुननेकी परम्परा अतिप्राचीन है। किसी कथाको कहने एवं सुननेवालोंकी पात्रता एवं भावना ही कथाकी रीति एवं महत्त्वको निर्धारित करती है। श्रीरामचरितमानसको एक सरोवर कहा गया है, जिसमें श्रीरामके दिव्य चरित्रका जल भरा हुआ है। इस सुन्दर सरोवरके चार घाट हैं। उपासना-घाटमें भक्तिके आचार्य काकभुशुण्डिने पक्षीराज गरुड़को, कर्मघाटमें आचार्य याज्ञवल्क्यने ऋषि भरद्वाजको, ज्ञानघाटमें महादेव भगवान् शंकरने गिरिजा पार्वतीको तथा दैन्यघाटमें गोस्वामी तुलसीदासजीने अनेक साधु-सन्तोंको यह कथा श्रद्धापूर्वक सुनायी। किसीका यह कथन प्रसिद्ध है कि—

कागभुसुंडि गरुड़ प्रति याज्ञवल्क्य भरद्वाज।
महादेव गिरिजा प्रति तुलसी संत समाज॥

कहनेका तात्पर्य है कि रामकथाके माध्यमसे हम

कर्म, ज्ञान, भक्ति एवं शरणागति, जो चाहें वह प्राप्त कर सकते हैं। यह हमें तय करना है कि हमारी आवश्यकता क्या है और इसीके अनुरूप ही उद्देश्यपूर्वक रामकथाको पढ़ना, सुनना एवं गुनना चाहिये। बहुत लोग रामकथाको आनन्दके लिये पढ़ते एवं सुनते हैं। रामकथाका उद्देश्य केवल आनन्द प्राप्त करना नहीं है। आनन्दके लिये इस कथाको पढ़ना या सुनना रामकथाका लघुतर उपयोग है। श्रीराम तो आनन्दके सागर हैं, इसलिये इस कथाको आप चाहे किसी भी घाटपर बैठकर सुनें, आनन्द अवश्य आयेगा। हमारे लिये रामकथाका उद्देश्य तो कर्म, ज्ञान, भक्ति एवं शरणागतिके माध्यमसे नरसे नारायण बननेकी योग्यता अर्जित करना होना चाहिये।

रामकथाका हमारे जीवनमें महत्त्व

संसारमें लोग बहुधा आम धारणाकी बात करते हैं। लेकिन जब हमें जीवनमें कुछ खास बनना हो, तो आम धारणाके सहारे यह सम्भव नहीं है। खास बननेके लिये किसी विषयपर हमारी समझ भी खास और सूत्ररूपमें होनी चाहिये। जैसे एक सूत्रके सहारे गणितके उलझे हुए सवाल आसानीसे सुलझा सकते हैं, वैसे ही व्यक्तित्वसे जुड़े हुए महत्त्वपूर्ण तथ्योंकी विशिष्ट एवं सूत्ररूपमें समझ होनेसे जीवनकी उलझनोंको आसानीसे सुलझाया जा सकता है। उदाहरणके रूपमें विचार करें तो यह आम धारणा है कि रामकथाको सुननेसे मुक्ति मिलती है। कुछ लोगोंकी यह भी धारणा है कि रामकथाको सुननेसे स्वर्ग मिलता है। इसी तरह कुछ लोग कहते हैं कि रामकथाको पढ़ने एवं सुननेसे श्रीरामके चरित्रको जानने एवं उनकी प्रभुताको पहचाननेका अवसर मिलता है। रामकथासे परम लाभ प्राप्त करनेके लिये हमें इन आम धारणाओंको खास बनाना पड़ेगा।

हमें जानना चाहिये कि रामकथा मुक्तिके लिये ही नहीं, बल्कि युक्तिके लिये भी है। इसके पात्रोंके चरित्रसे युक्ति प्राप्तकर जब हम अपने जीवनमें उसका प्रयोग करते हैं, उसे अपने व्यक्तित्व एवं व्यवहारका अंग बनाते हैं, तब वही युक्ति हमें मुक्तिका मार्ग दिखाती है। इसी तरह यह बात सत्य है कि रामकथा पढ़ने या सुननेसे हमें श्रीराम एवं अन्य पात्रोंके जीवन, उनके संघर्ष एवं विपरीत परिस्थितियोंमें उनके व्यवहारको जानने एवं समझनेका अवसर मिलता है। लेकिन इससे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उन पात्रोंमें हम स्वयंको खोजनेका प्रयास करें। यदि हम यह कर पाते हैं तो रामकथाका हमारे जीवनमें महत्त्व बढ़ जायगा। हमारा जीवन भी एक रामायण है। रामायणकी घटनाएँ दिन-प्रतिदिन हमारे भीतर घटती रहती हैं। रामायणके पात्रोंको हम रोज जीते हैं। अलग-अलग परिस्थितियोंमें हम कभी राम तो कभी रावण, कभी भरत तो कभी लक्ष्मण, कभी कैकेयी तो कभी दशरथ, कभी कौसल्या तो कभी सुमित्रा, कभी सीता तो कभी मन्दोदरी, कभी जनक तो कभी परशुराम, कभी वसिष्ठ तो कभी विश्वामित्र, कभी महादेव शंकर तो कभी सती, कभी अहल्या तो कभी शबरी, कभी सुग्रीव तो कभी विभीषण, कभी केवट तो कभी समुद्र इत्यादि होते हैं। किसी विशेष परिस्थितिमें हमारी स्थिति रामायणके किस पात्र-जैसी है और उस परिस्थितिमें वह पात्र जो व्यवहार करता है या निर्णय लेता है, उसे आधार मानकर हम भी अपना व्यवहार एवं निर्णय निर्धारित कर सकते हैं। रामकथाको पढ़कर या सुनकर यदि हम यह दक्षता अर्जित कर पानेमें सफल होते हैं तो हमारा रामकथा पढ़ने एवं सुननेके साथ-साथ जीवन भी सार्थक हो जायगा। इसलिये हमें रामकथाको मुक्तिके लिये ही नहीं बल्कि युक्तिके लिये भी पढ़ना चाहिये। रामकथाको स्वर्ग जानेके लिये ही नहीं, बल्कि स्वर्गको जीवनमें लानेके लिये भी पढ़ना चाहिये। रामकथाको श्रीरामको जानने या उनकी प्रभुताको पहचाननेके लिये ही नहीं, बल्कि स्वयंको जानने तथा अपने सामर्थ्यको पहचाननेके लिये भी पढ़ना चाहिये। रामकथाका यही विशिष्ट महत्त्व है।

श्रीहनुमान्‌जीकी दास्यभक्ति

(श्रीगोपालदासजी)

नारदजी ब्रह्माजीके मानस पुत्र तथा भगवान् नारायणके भक्त हैं। भक्तिका प्रचार-प्रसार तथा आचरणद्वारा आदर्श स्थापितकर जागतिक जीवोंको भगवदुन्मुख करना इनका एकमात्र ध्येय तथा लक्ष्य है। इस सन्दर्भमें बृहद्भागवतामृतमें एक रोचक प्रसंग प्राप्त होता है। एक बार नारदजीके मनमें कौतूहल हुआ कि भगवान्‌का सबसे अधिक भक्त या कृपापात्र कौन है? इस सन्दर्भमें वे प्रयागनिवासी एक शालग्रामपूजक भक्तसे मिले। भक्तने निकटवर्ती देशके राजाको अपनेसे बड़ा भक्त बताया। राजाने इन्द्र तथा इन्द्रने अपने दोषोंका वर्णन करते हुए उन्हें ब्रह्माके पास भेजा। ब्रह्माजीने महादेवको भगवान्‌का परम भक्त बताया। महादेवजीने अपनेको भगवत्कृपापात्र नहीं माना तथा वैकुण्ठवासियोंके भाग्यकी सराहना की। पार्वतीजीने लक्ष्मीजीको भगवान्‌का परम कृपापात्र बताकर सराहना की। नारदजी वैकुण्ठ जाने लगे, तो महादेवजीने नारदसे कहा कि इस समय भगवान् पृथ्वीपर द्वारकापुरीमें लीला कर रहे हैं, तबतक आप सुतललोकमें जाकर उनके भक्त प्रह्लादजीके दर्शन करें। नारदजी प्रह्लादजीके पास जाकर बोले कि हे प्रह्लादजी! निश्चय ही आप भगवान्‌के श्रेष्ठ भक्त हैं। प्रह्लादजीने अपने सम्बन्धमें नारदजीकी समस्त धारणाओंका निरसन करते हुए उनसे कहा—

निरुपाधिकृपार्द्रचित्त हे बहुदौर्भाग्यनिरूपणेन किम्।
तव शुग्जननेन पश्य तत् करुणां किंपुरुषे हनूमति॥

(बृहद्भागवतामृत १।४।३७)

हे मुनिश्रेष्ठ! आप निर्हेतुक कृपालु हैं। मैं अपने दुर्भाग्योंका अधिक निरूपणकर आपको दुखी नहीं करना चाहता। आप किंपुरुषवर्षमें जाकर हनुमान्‌जीका दर्शन कीजिये। वहाँ वे अपने प्रभुकी ही कीर्ति सुनकर अपने प्राणोंको धारण करते हैं और उनके विग्रहके पार्श्वभागमें स्थित होकर आज भी वे पूर्ववत् विराजमान हैं।

आत्मानं नित्यतत्कीर्तिश्रवणेनोपधारयन्।
तन्मूर्तिपार्श्वतस्तिष्ठन् राजतेऽद्यापि पूर्ववत्॥

प्रह्लादजीने आगे कहा—

हनूमांस्तु महाभाग्यस्तत्सेवासुखमन्वभूत्।
सुबहूनि सहस्राणि वत्सराणामविघ्नकम्॥
यो बलिष्ठतमो बाल्ये देववृन्दप्रसादतः।
सम्प्राप्तसद्वरव्रातो जरामरणवर्जितः॥

(बृहद्भागवतामृत १।४।४१-४२)

श्रीहनुमान्‌जी बड़े भाग्यशाली हैं, उन्होंने भगवान् राघवेन्द्रके सेवा-सुखका निरन्तर ग्यारह हजार वर्षोंतक निर्विघ्नरूपसे आस्वादन किया है। वे अतिशय बलवान् हैं और देवताओंकी कृपासे अनेक वरदान पाकर जरा-मरणसे रहित हैं।

नारदजी! आप विचार कीजिये कि हनुमान्‌जी-जैसा भगवत्कृपापात्र और कौन हो सकता है? वे प्रभु श्रीरामके श्रेष्ठ वाहन हैं। उनकी पूँछ प्रभुके लिये श्वेतछत्र-स्थानीय है। उनकी पीठ प्रभुका सुखद आसन है। सच पूछिये तो श्रीरामकी विजयके सम्पादक हनुमान्‌जी ही हैं। वे ही सब प्रकारसे श्रीभगवान्‌के कृपाभाजन हैं। यहाँतक कि प्रभुकी आज्ञाका पालन करते हुए प्रभु श्रीरामके असह्य विरहको भी सहनकर वे यहाँ पृथ्वीलोकपर विराजते हैं। प्रभुके साथ वे साकेतलोकमें नहीं गये। केवल इसलिये कि भगवद्विमुख जीवोंको दास्यभक्तिकी शिक्षा प्रदानकर उनका संसार-सागरसे निस्तार कर सकें।

स्वामिन् कपिपतिर्दास्य इत्यादिवचनैः खलु।
प्रसिद्धो महिमा तस्य दास्यमेव प्रभोः कृपा॥
यदृच्छया लब्धमपि विष्णोर्दाशरथेस्तु यः।
नैच्छन्मोक्षं विना दास्यं तस्मै हनुमते नमः॥

(बृहद्भागवतामृत १।४।५१-५२)

प्रह्लादजीने आगे कहा—स्वामिन्! दास्यभक्तिमें हनुमान्‌जीकी महिमा प्रसिद्ध है। वे अग्रगण्य हैं। श्रीरामजीसे अनायास मुक्ति प्राप्त कर सकते हुए भी, जिन्होंने उनकी दास्यभक्ति माँगी, मैं उन हनुमान्‌जीको प्रणाम करता हूँ। और अधिक क्या कहूँ! मुझसे अधिक उनकी महिमा तो आप ही जानते हैं।

नारदजी हनुमान्‌जीके पास गये—

श्रीमन् भगवतः सत्यं त्वमेव परमप्रियः।
अहं च तत्प्रियोऽभूवमद्य यत् त्वां व्यलोकयम्॥

श्रीमन् मारुति! सत्य ही आप श्रीभगवान्‌के परमप्रिय हैं! मैं भी आपके दर्शनकर आज प्रभुका प्यारा बन गया और भगवान्‌की कृपाका अनुभव कर रहा हूँ। इस प्रकार नारदजीने हनुमान्‌जीकी अनेक प्रकारसे प्रशंसा की।

प्रभुके प्रति पूर्ण समर्पण आवश्यक

(डॉ० श्रीयमुनाप्रसादजी अग्रवाल)

तुम बिन कौन सुने प्रभु मोरी।
तुम समरथ सब लायक दाता मोपर कृपा करौ री।
दासकी बिपत निवारण कीजिए अर्ज करुँ कर जोरी॥

जबतक व्यक्ति पूर्णरूपेण ईश्वरके प्रति समर्पित नहीं होता, जबतक वह अन्य धर्मों, अन्य कर्मों एवं अन्य आश्रयोंका सहारा लेता रहता है, वह अपना हाथ-पैर अपनी सुरक्षामें पटकता रहता है, वह स्वयंकी शक्तिपर आश्रित रहता है, ईश्वर उसकी मददके लिये नहीं आते हैं। व्यक्ति जब अहंकाररहित होकर शून्यकी स्थितिमें आकर असहाय एवं अकेला होकर ईश्वरको पुकारता है, तभी ईश्वर उसकी मददके लिये खड़े दिखायी पड़ते हैं।

भागवत-महापुराणके अष्टम स्कन्धमें गजेन्द्रकी कहानी बहुत ही सारगर्भित एवं व्यंजनापूर्ण है। गजेन्द्र बहुत ही शक्तिशाली एवं अहंकारी हाथी था। वह त्रिकूट नामक पर्वतकी तलहटीके विशाल जंगलमें रहता था। अपनी शक्ति और सामर्थ्यसे उसने एक बड़ा परिवार बना लिया था। उसकी कई हथिनी पत्नियाँ थीं एवं उसके कई हाथी पुत्र थे। जब वह चलता था, तो पर्वत भी उसकी चालकी धमकसे काँप जाते थे। शेर भी उससे भयभीत होते थे। उसे अपनी शक्तिपर भरोसा एवं अहंकार था।

एक बार गजेन्द्र कई हाथियों तथा हथिनियोंके साथ बगलके सरोवरमें पानी पीने लगा। स्वच्छ पानीको देखकर उसमें स्नान करने लगा और पूरे सरोवरको गन्दा कर दिया। गजेन्द्र पानीमें मस्त होकर हथिनियोंपर पानी उछालने लगा। इसी बीच एक मगरमच्छने उसका पैर अपने मुँहमें दबा लिया। गजेन्द्र संघर्ष करने लगा। यह संघर्ष लगभग एक हजार वर्षतक चला। धीरे-धीरे गजेन्द्र अपनेको कमजोर और असहाय महसूस करने लगा। प्रारम्भमें उसके परिवारके सारे हथिनियों एवं हाथियोंने भी उसका साथ दिया, परंतु फिर उसे अकेला छोड़कर चले गये। मरनेवालेके साथ अपना-से-भी-अपना कोई नहीं मरता।

गजेन्द्रका सारा अहंकार समाप्त हो गया। वह बिलकुल अकेला और दीन-हीन हो गया। अब उसने अपना प्रयास करना भी छोड़ दिया। उसे लगा कि अब उसको ईश्वरके अलावा कोई भी शक्ति नहीं बचा सकती। वह ईश्वरके प्रति समर्पित हो गया और समर्पित होकर प्रार्थना करने लगा, 'हे प्रभु! मैं अकेला एवं असहाय हूँ। तुम्हारे अलावा मेरा इस दुनियामें कोई नहीं है। मेरी रक्षा कीजिये। मुझे बचा लो प्रभो!' ईश्वर तो समर्पित भक्तोंके वशमें ही होते हैं। श्रीराम स्वयं कहते हैं—

काम आदि मद दंभ न जाकें। तात निरंतर बस मैं ताकें॥

(रा०च०मा० ३।१६।१२)

गजेन्द्रके आर्त वचनको सुनकर प्रभु दौड़ते आये और उसको मगरमच्छसे मुक्त किया।

महारथियोंसे भरे कौरवोंके दरबारमें जब द्रौपदीके चीरहरणका प्रयास प्रारम्भ हुआ, तब द्रौपदीको लगा कि इस दरबारमें बैठे पाण्डव, भीष्मपितामह एवं अन्य गुरुजन उसकी सहायतामें जरूर खड़े हो जायँगे। उसे अपने पाण्डव पतियोंपर बहुत घमण्ड था। द्रौपदी स्वयं बचावके लिये हाथ-पाँव भी मारने लगी। क्रोधित हो

डाँट-फटकार करने लगी, किंतु वह असहाय हो गयी। किसीने भी उसकी रक्षा नहीं की। उसका सारा अहंकार चूर-चूर होकर शून्य हो गया। उसको लगा कि अब श्रीकृष्णके अलावा उसे कोई बचा नहीं सकता। वह आर्त एवं असहाय हो ईश्वरके प्रति समर्पित होकर दोनों हाथोंको ऊपर उठा प्रार्थना करने लगी, तो भगवान् श्रीकृष्णने तुरन्त द्रौपदीकी रक्षा की।

इन दोनों घटनाओंसे यह स्पष्ट है कि व्यक्ति जब ताकतवर होता है या अपनेको ताकतवर महसूस करता है, उसमें अहंकार आ जाता है और अहंकार ही उसके पतनका कारण होता है। साथमें यह भी स्पष्ट होता है कि ईश्वरके अलावा कोई मददगार नहीं है। उजला बादल पानी क्या देगा? जिसे स्वयं मददकी अपेक्षा है, वह दूसरोंकी मदद क्या करेगा। ईश्वर ही सही मददगार है। तीसरी बात जो सारांश है, ईश्वरके प्रति पूर्ण समर्पण ही भक्तिका रहस्य है। स्वयंका सुरक्षा-कवच है। जबतक भक्तमें समर्पणका भाव नहीं जगेगा, उसका अहंकार शून्य नहीं होगा। उसमें 'मैं और मेरा' की भावना जबतक समाप्त नहीं होगी, तबतक उसे ईश्वरकी कृपा दिखायी नहीं देगी। ईश्वर और व्यक्तिके बीच व्यक्तिका अहंकार ही सबसे बड़ी दीवार है। जबतक भक्त शून्यकी स्थितिमें आकर ईश्वरको आदर देकर अन्दरसे यह नहीं कहता—

'तुम्हीं हो माता, तुम्हीं पिता हो
तुम्हीं नाव हो तुम्हीं हो नाविक
तुम्हीं हो आश्रय, तुम्हीं सहारा,
मैं तो बस शून्य बेबस बेचारा'

—तबतक 'मैं' की दीवार समाप्त नहीं होती। कोई भी ईश्वरीय शक्ति उसकी मददके लिये नहीं आ सकती। भगवद्गीताके १२वें अध्यायके छठवें और सातवें श्लोकोंका पद्यरूपमें सारांश है—

समर्पित कर सब कर्म मुझको
भजते अनन्य भक्ति भावसे जो
ऐसे दृढ़ निश्चयी समर्पितोंको
पार करता मैं भवसागर से

गीताके १८वें अध्यायके ६६वें श्लोकमें तो श्रीकृष्ण अर्जुनसे सब कुछ त्यागकर पूर्ण समर्पणकी बात साफ-साफ कहते हैं। सारांशमें हिन्दी पद्यके रूपमें उनकी बात इस प्रकार है—

छोड़कर तुम सभी धर्मों-कर्मोंको
मेरी शरणमें ही आ जाओ, पार्थ
सब पापोंसे तुमको मुक्त करूँगा
करो न चिंता यह मेरा आश्वासन

श्रीरामचरितमानसमें तुलसीदासजीकी भी सलाह है कि सारे कार्योंको छोड़ ईश्वरके प्रति हम समर्पित हो जायँ। वे कहते हैं—हे मनुष्यो! अनेक प्रकारके कर्म, अधर्म और बहुत-से मत—ये सब शोकप्रद हैं; इनका त्याग कर दो और विश्वास करके श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम करो।

नर बिबिध कर्म अधर्म बहु मत सोकप्रद सब त्यागहू।
बिस्वास करि कह दास तुलसी राम पद अनुरागहू॥

(रा०च०मा० ३। ३६। छंद)

मनुष्यकी चाहे लौकिक समस्याएँ हों अथवा पारलौकिक उन्नतिमें आनेवाली बाधाएँ हों, इन सभीके समग्रतया समाधानका एक ही मार्ग है, वह है परमात्माके प्रति पूर्ण समर्पण। सन्तजन भी यही मानते हैं कि ईश्वरके प्रति समर्पण ही इस मायासागरसे पार करनेके लिये नाव है।

कहानी—

अभी और कुछ बाकी है

(वैद्य श्रीलक्ष्मणप्रसादजी भट्ट दीक्षित)

एक पण्डितजी थे, बड़े ही सरल स्वभाव और पण्डिताईसे ही अपना जीवन-यापन करनेवाले। उनकी एक पत्नी थी, बच्चा कोई था नहीं, अच्छा शान्तिपूर्वक जीवन-यापन हो रहा था। दैवयोगसे उनकी पत्नीकी मृत्यु हो गयी। अब पण्डितजी बेचारे बड़े परेशान, पड़ोसियों और गाँववालोंने कह-सुनकर उनकी दूसरी शादी करवा दी। जीवन पटरीपर आया, किंतु पण्डितजी फिर भी उदास रहते। नयी पण्डितानीने पूछा—'मेरे रहते आप उदास क्यों रहते हैं?' पण्डितजीने कहा—कोई बात नहीं है!

एक दिन नयी पण्डितानीने अपनी सहेली पड़ोसिनसे पूछा और कहा—हमारे पण्डितजी न जाने क्यों उदास रहते हैं?

पड़ोसिन सहेलीने कहा—अभी इनके दिमागमें पहली पत्नी ही भरी हुई है, उसीकी यादमें उदास रहते हैं! पण्डितानीने कहा—'आप सही कहती हैं।'

एक दिन पण्डितजी कहींसे सत्यनारायणकी कथा कहकर आ रहे थे। रास्तेमें उनको ठोकर लगी। शाम होने जा रही थी, पण्डितजी ठोकर खाकर गिर पड़े। उन्होंने देखा कि ठोकर किस चीजकी लगी है, तो पाया कि यह तो मानव-खोपड़ी है। उन्होंने पैरसे उसे रास्तेमेंसे हटा दिया, किंतु पण्डितजीने देखा कि इसपर कुछ लिखा हुआ है, पढ़कर देखा तो लिखा था कि 'अभी और कुछ बाकी है।'

पण्डितजी इस वाक्यको पढ़कर हैरान हुए कि मरनेके बाद खोपड़ी पड़ी रही। रास्तेमें ठोकर खायी फिर भी लिखा है कि 'अभी और कुछ बाकी है।' पण्डितजीने कहा कि अब मैं इसी बातको देखूँगा कि 'अभी और कुछ क्या बाकी है?'

पण्डितजी कथाके लाल कपड़ेमें उस खोपड़ीको बाँधकर ले आये और बक्सके अन्दर रखकर तालेमें बन्द कर दिया। पण्डितजी अमावस, पूर्णिमाको उसे निकालकर धूपबत्ती, अगरबत्ती लगाकर रख देते और चाभीको अपने जनेऊमें बाँध लेते, पण्डितानीने सोचा कि इन्होंने इस बक्सेमें क्या चीज रखी है।

एक दिन सूर्यग्रहण पड़ा, पण्डितजीने स्नान करके पुराने जनेऊको बदल दिया और घरमें जो पेड़ था, उसमें बाँध दिया। पण्डितानीको अब चाभी हाथ लग गयी, चाभीसे बक्सेको खोला, तो लाल कपड़ेमें बँधी हुई मानव-खोपड़ी मिली।

पण्डितानीने विचार किया कि मेरी सहेली पड़ोसिन सही कहती थी। ये पहली पत्नीकी यादमें खोये रहते हैं, यह उसी मेरी सौतकी खोपड़ी है, पण्डितानीका गुस्सा बढ़ गया और उसने खोपड़ीको निकालकर ओखलीमें रखकर, धनकूटासे कूट दिया और उसके टुकड़े-टुकड़े करके उसी कपड़ेमें बाँधकर कूड़ा डालनेके स्थानपर फेंक दिया।

पण्डितजी कहींसे आये तो देखा कि बक्सा खुला हुआ है। पण्डितजीने पूछा तो उसने बताया कि 'मैंने उसे ओखलीमें कूटकर घूरेपर फेंक दिया। जाओ, वहींपर देख लो।' अब पण्डितजीकी समझमें आ गया कि यही काम होना बाकी था। जो उसमें सही लिखा था कि 'अभी और कुछ बाकी है।' भाग्यका पता नहीं, इसमें क्या लिखा हुआ है।

इसी प्रकार हम-आप सबका जीवन भी है। पूर्व जन्मोंमें किये गये कर्मोंके अनुसार उनका फल सुख या दुःखके रूपमें प्राप्त होता है। पूर्वमें जो हो गया है, वह तो हमें ज्ञात नहीं होता, पर आगेके लिये सचेत रहा जाय, जिससे हिसाब-किताब कुछ 'बाकी' न रह जाय; क्योंकि यह 'बाकी' ही संसारमें बार-बार आवागमनका कारण है।

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा । अहं करोमीति वृथाभिमानः स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः॥

सुख और दुःखका देनेवाला कोई और नहीं है; 'कोई अन्य सुख-दुःख देता है' यह समझना कुबुद्धि है। 'मैं करता हूँ' यह वृथा अभिमान है, क्योंकि लोग अपने-अपने कर्मोंकी डोरीमें बँधे हुए हैं। [**अध्यात्मरामायण २। ६। ६**]

'अबलौं नसानी, अब न नसैहों'

(डॉ० श्रीफूलचन्द प्रसादजी गुप्त)

जीवनका बहुमूल्य समय निकलता जा रहा है। हम जीवन-लक्ष्यसे भटके पथिककी तरह जीवनके यात्रा-पथपर निरन्तर चलते जा रहे हैं। भौतिक संसाधनोंकी भूख मिट नहीं रही। संसाधनोंको एकत्र करना ही हमारा उद्देश्य बन चुका है। स्वर्ण-हीरे-मोती-बहुमूल्य रत्न हमारी भूखको मिटानेमें असमर्थ हो चुके हैं, फिर भी उनके प्रति हमारा आकर्षण कम नहीं हुआ है। इनके पीछे हम अपने नैतिक चरित्रको भी खोते जा रहे हैं। सभी भौतिक रत्न भार ही हैं, जो अन्ततः हमें डुबायेंगे। उबरता वही है, जो भार-मुक्त होता है। यदि मझधारसे तटतक पहुँचना है, तो हमें भार-मुक्त होना ही पड़ेगा। अबतककी यात्राको भूलकर यहाँसे एक नयी यात्रा प्रारम्भ करनी पड़ेगी। अपनी आदतोंमें परिवर्तन करना पड़ेगा। मात्र प्रवचन सुनना ही पर्याप्त नहीं है, इससे यदि सकारात्मक परिवर्तन नहीं होता है, तो प्रवचन मनोरंजनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं। इसलिये सुनना, गुनना और नये मनुष्यमें परिवर्तित हो जाना ही श्रेयस्कर होगा।

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि हमारी दशा उस तोतेकी तरह है, जो पिंजड़ेका द्वार खुला होनेपर भी बाहर नहीं निकलता है और स्वयंके हठके वशीभूत होकर उसीमें पड़ा रहता है—***'बिन बाँधे निज हठ सठ परबस पर्‌यो कीरकी नाईं।'*** (विनय-पत्रिका, पद १२०) हम अपनी आदतोंके दास हैं। हमारे अन्दर वह आत्मबल नहीं आ पाता कि हम इनसे मुक्ति पा सकें। यह जानते हुए भी कि अमुक आदत हमारे आध्यात्मिक मार्गकी बाधा है, उसे भी छोड़ नहीं पाते। गोस्वामी तुलसीदासजीको भी बहुत समय बाद अपने जीवनकी सार्थकताके अभावका ज्ञान हुआ, फिर उन्होंने पथ-परिवर्तन कर लिया। उसी आत्मबलने उन्हें सुपथका अनुगामी बनाया।

बहुतसे महापुरुषोंका पूर्वार्द्ध-जीवन सुपथगामी नहीं रहा है, पर सद्ज्ञान होनेपर उन्होंने अपने आत्मबलसे अपनी बुरी आदतोंसे मुक्त होते हुए अध्यात्म (भक्ति)-का मार्ग चुना। आदिकवि महर्षिका पूर्वार्द्ध-जीवन ऐसा ही रहा, पर बादमें सद्ज्ञान होनेपर उन्होंने अपना मार्ग बदला और जगत्‌में पूज्य हो गये। गोस्वामी तुलसीदासका पूर्वार्द्ध-जीवन भी मोहग्रस्त रहा, पर पत्नी रत्नावलीने उन्हें सन्मार्ग दिखाया और भक्तिका मार्ग प्रशस्त किया, तो उन्होंने श्रीराम-भक्तिकी राह पकड़ अपना उद्धार कर लिया। अपनी दोहावलीमें गोस्वामीजी कहते हैं कि ऐसे भी लोग हैं, जो जागते हुए सोते रहते हैं, जानबूझकर अनीतिके मार्गपर चलते हैं—***'जो सुनि समुझि अनीतिरत, जागत रहै जु सोइ।'*** ऐसे लोग अपनी आदतोंके खोलसे बाहर नहीं आ पाते हैं। गोस्वामीजी पूर्वार्द्धके जीवनकी निरर्थकताको ध्यानमें रखकर कह उठते हैं—***'रामकृपा भव-निसा सिरानी, जागे फिरि न डसैहौं।'*** भगवान् श्रीरामकी कृपासे सांसारिक रात्रि बीत गयी है, अब मैं जाग गया हूँ, अब मोह-मायाका बिस्तर बिछानेवाला नहीं हूँ। जागरण होनेपर नींद कहाँ आती है। वास्तविक जागरण होनेपर व्यक्ति असाधारण हो जाता है।

मनुष्य विवेकशील है। ईश्वरने मानवको शरीरका उपहार देकर उसे जीवनोद्धारका एक सुअवसर प्रदान किया है, पर वह अपने जीवनभर अपने उद्देश्यसे भटका कंकड़-पत्थरके संग्रहमें जीवन बिता रहा है। न उसे मानवीय मूल्योंकी चिन्ता है और न ही उसे अपने उद्धार की। हम अपने अतीतके जीवनका मूल्यांकन करें तो पायेंगे कि हमारा मन-मस्तिष्क छल-कपट, दम्भ, ईर्ष्या-द्वेषका घर बना हुआ है। ऐसेमें उसपर नैतिक उपदेशोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

पूज्य राधा बाबा कहते हैं— ***'गयी सो गयी, अब राख रही को।'*** जीवनके जो दिन गये सो गये, शेषके एक-एक क्षणका हम सदुपयोग करें। प्रातःकालका भूला सायंकाल भी घर पहुँच जाय तो कोई बात नहीं।

जीवन जीवकी अनन्त-यात्राका एक पड़ाव है। इसी पड़ावमें आगेकी यात्राका पाथेय प्राप्त करना होता है। समय बीतता जाता है और हम इस पड़ावमें भौतिक सुख-सम्पदाकी प्राप्तिमें इसे गवाँ देते हैं और मानव-तन छूट जाता है। जीव हारे हुए जुआरीकी तरह हाथ मलता हुआ रह जाता है। मनुष्य भौतिक ऐश्वर्य पाकर

अपनेको कृतकृत्य मान लेता है, यही उसका भ्रम है। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

तुलसी निरभय होत नर, सुनिअत सुरपुर जाइ।
सो गति लखि ब्रत अछत तनु, सुख संपति गति पाइ॥

सुना जाता है कि स्वर्गमें जाकर जीव निर्भय हो जाता है, परंतु ऐसी दशा तो यहाँ शरीरके रहते भी सुख-सम्पत्ति और ऊँची पदवी पानेपर देखी जाती है। सुख-सम्पत्ति और पद प्राप्त कर लेनेपर मनुष्य भी अभिमानवश अपनेको निर्भय ही मानता है। जीवनरूपी पड़ावमें मनुष्यको शरीरकी नश्वरताको कभी नहीं भूलना चाहिये और काल-गतिका सदैव स्मरण करते रहना चाहिये। गोस्वामी तुलसीदासजीका यह कथन समीचीन है कि हाथोंसे तेरी चोटी पकड़कर मृत्यु नित्य ही झपटकर तुम्हें चपत जमा रही है। यह दशा देख-सुनकर और अनुभव करके भी तू नहीं समझता और अपनी मृत्युको भुलाकर विषय-सेवनमें ही लगा रहता है, जो तुम्हें अधोगामी बना रहे हैं—

तुलसी देखत अनुभवत, सुनत न समुझत नीच।
चपरि चपेटे देत नित, केस गहें कर मीच॥

(दोहावली ४४८)

मनुष्य जबतक मन और इन्द्रियोंके वशमें होता है, तबतक वे उसे नचाते रहते हैं और हँसी भी उड़ाते हैं। तुलसीदासजी संकल्पके साथ कहते हैं कि मैंने मन और इन्द्रियोंको जीत लिया है, अब उनसे अपनी हँसी नहीं कराऊँगा। मन और इन्द्रियोंके वशमें होनेपर जीव परतन्त्र होता है, उसका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रह जाता।

'परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं।'

(विनय-पत्रिका, पद १०५)

गोस्वामीजी कहते हैं कि यह परवशता स्वयंकी बनायी हुई है। अज्ञानतावश कर्मरूपी रस्सी जब मजबूत करके अपने ही हाथोंसे उसमें अविद्यारूपी पक्की गाँठ लगायी है, तो तू स्वयं ही परतन्त्र पड़ा हुआ है।

तैं निज करम-डोरि दृढ़ कीन्हीं। अपने करनि गाँठि गहि दीन्हीं॥
ताते परबस पर्‌यो अभागे। ता फल गरभ-बास दुख आगे॥

(विनय-पत्रिका, पद १३६। ३)

जीवनका जो भी भाग शेष है, अब व्यर्थमें नहीं गँवाना है। उसे सत्कर्मों और ईश्वर-आराधनामें ही सफल करना है।

जब शमीक मुनिके पुत्रने राजा परीक्षित्‌को शाप दिया कि मेरी प्रेरणासे आजके सातवें दिन उसे तक्षक सर्प डँस लेगा, तो राजाके पास जीवनके सात दिन ही शेष बचे थे। उसी प्रकार जीवनके कितने पल, घण्टे, दिन शेष हैं, भला कौन बता सकता है! राजाने सोचा कि मैं बहुत दिनोंसे संसारमें आसक्त हो रहा था, अब मुझे शीघ्र वैराग्य होनेका कारण प्राप्त हो गया। निरन्तर देह-गेहमें आसक्त रहनेके कारण मैं भी पापरूप हो गया था। उन्होंने देवर्षियों-राजर्षियों और ब्रह्मर्षियोंसे पूछा कि थोड़े ही समयमें मरनेवाले पुरुषोंके लिये अन्तःकरण और शरीरसे करनेयोग्य विशुद्ध कर्म कौन-सा है? यही प्रश्न उन्होंने व्यासनन्दन भगवान् शुकदेवजीसे भी पूछा। शुकदेवजीने कहा कि मनुष्य-जन्मका यही इतना लाभ है कि चाहे जैसे हो, ज्ञानसे, भक्तिसे अथवा अपने धर्मकी निष्ठासे जीवनको ऐसा बना लिया जाय कि मृत्युके समय भगवान्‌की स्मृति अवश्य बनी रहे—

एतावान् सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्मपरिनिष्ठया।
जन्मलाभः परः पुंसामन्ते नारायणस्मृतिः॥

(श्रीमद्भा० २। १। ६)

इस संसारमें मनुष्योंकी दशा भी राजा परीक्षित्‌की तरह है। जीवनका बहुत समय संसारासक्तिमें बीत चुका है। कुछ ही समय बचा है, तो उन्हें भी राजा परीक्षित्‌के वैराग्य-मार्गका अनुसरण करते हुए अपने-आपको भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित कर देना चाहिये। भगवान् शुकदेवने कहा कि अपने कल्याण-साधनकी ओरसे असावधान रहनेवाले पुरुषकी वर्षों लम्बी आयु भी अनजानमें ही व्यर्थ बीत जाती है। उससे क्या लाभ? सावधानीसे ज्ञानपूर्वक बितायी हुई घड़ी-दो घड़ी भी श्रेष्ठ है; क्योंकि उसके द्वारा अपने कल्याणकी चेष्टा तो की जा सकती है।

किं प्रमत्तस्य बहुभिः परोक्षैर्हायनैरिह।
वरं मुहूर्तं विदितं घटेत श्रेयसे यतः॥

(श्रीमद्भा० २। १। १२)

जीवनका शेष भाग सांसारिक विषयोंसे विरक्त होकर व्यतीतकर मनुष्य अपना ऐहिक और पारलौकिक कल्याण कर सकता है। वह ईश्वरके चरणोंमें अपने कर्मोंको समर्पितकर और उन्हें स्मरण करते हुए अपने मानव-शरीरकी सार्थकताको सिद्ध कर सकता है।

वसुनायकजीकी भोजपुरी रामलीला रामायण

(श्रीउमेशप्रसाद सिंहजी)

हमारे यहाँ रामकथाके साथ ही रामलीलाकी अति प्राचीन परम्परा रही है। यदुवंशियोंद्वारा रामायण नाटक खेलनेका उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि भगवान् श्रीकृष्णके समयसे ही रामलीलाका आरम्भ था। काकभुशुण्डिजी कहते हैं—

खेलउँ तहूँ बालकन्ह मीला। करउँ सकल रघुनायक लीला॥

इससे रामकथाकी तरह रामलीलाकी भी अनादिता सिद्ध होती है। प्राचीन कालसे लेकर अबतक अनेक कवि रामकथाको रामलीलाके रूपमें प्रस्तुत करना श्रेयस्कर समझते रहे हैं। ऐसे अनेक कवि हुए हैं, जिन्होंने विभिन्न लोकभाषाओंमें रामलीला-रामायणकी रचना की। कलाकार लोकगीतोंके माध्यमसे संवाद बोलते हैं, जिसका दर्शकोंपर गहरा असर होता है। लोकगीतोंमें हृदयके उद्‌गार-ही-उद्‌गार होते हैं। न कोई निश्चित छन्द, न कोई निश्चित सुर। परंतु भाव और भाषाका ऐसा प्रवाह होता है उनमें, कि कण्ठसे निकलते ही हृदयमें घर कर लेते हैं वे।

भोजपुरी समृद्ध भाषा है। देश-दुनियामें लगभग बीस करोड़ भोजपुरी भाषाभाषी रहते हैं। वसुनायकजीने इस भाषामें रामलीला-रामायणकी रचनाकर अलौकिक कार्य किया है। उनका जन्म उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तिम वर्षोंमें उत्तर बिहारमें छपराके पास गंगा-किनारे स्थित फकुली गाँवमें हुआ था। गरीबीके चलते शिक्षा बहुत कम हुई, लेकिन कुश्ती लड़नेमें वे बेजोड़ थे। साथ ही हनुमान्‌जीके अनन्य भक्त थे। हनुमान्‌जीकी उनपर बड़ी कृपा थी। कहते हैं कि एक बार वसुनायकजी कोलकाता गये। वहाँ धर्मतल्ला मैदानमें कुश्तीकी प्रतियोगिताका आयोजन था। तमाम पहलवान जोर आजमाइश कर रहे थे। तभी एक पठान पहलवान आया। वह जोरसे चिल्लाने लगा 'यहाँ है कोई पहलवान, जो मेरा मुकाबला कर सके।' सन्नाटा छा गया। वसुनायकजीकी उम्र उस समय २० वर्षकी थी। वे बजरंगबलीका नाम लेकर अखाड़ेमें कूद गये और उस पठानको परास्त कर दिया। इस घटनाके बाद उनका मन बदल गया। गाँव लौट गये। गंगातटपर दालान बनाकर रहने लगे। उनका जीवन तपस्वीका हो गया। उसी समय उन्होंने भोजपुरी रामलीला रामायणकी रचना की। उनका यह ग्रन्थ श्रीरामचरितमानसपर आधारित है। उन्होंने लिखा—

श्रीगुरु गणपति सुमिरी तुलसीदास प्रसाद।
करौं रामलीलार्थ यह मानस का अनुवाद॥

वसुनायकजी हनुमान्‌जीके परम प्रिय भक्त थे। उनकी वन्दनाके बिना लेखनी कैसे चलती? माँ सरस्वती और भगवान् गणेशकी वन्दनाके पश्चात् हनुमान्‌जीकी कृपाकी कामना करते हुए उन्होंने लिखा—

एक भुजा गहि वज्र गदा पुनि एक भुजा धवलागिरि धारी।
पीत जनेउ पितांबर सोभित कानन कुंडल क्रीट सँवारी॥
लाल लँगोट लँगूर बिसाल कृपाल सदा जन के हितकारी।
सो हनुमान कृपा करिए वसुनायक पै निज दास निहारी॥

इस भोजपुरी रामायणमें सातों काण्ड समाहित हैं। पुस्तकमें वाद्य-संगीत और समाजी पृष्ठभूमिमें रहते हैं। समाजी कहीं दोहों, सवैयों, चौपाइयोंके माध्यमसे कथाको आगे बढ़ाते हैं और आसन्न घटनाओंकी पूर्व सूचना भी देते हैं। इसमें एक प्रसंग बक्सरका है। विश्वामित्र मुनिके साथ उनके पथकी रक्षा करने राम, लक्ष्मण आये हैं। तब समाजी लोग कथाको आगे बढ़ाते हैं—

कछु दिन तहाँ रहे रघुनाथा। मुनिगण को भल किए सनाथा॥
जनक दूत जाए मुनि पासा। पत्र देइ अस बचन प्रकासा॥

जनकनरेश निमिने जो पत्र भेजा, उसमें लिखा है—

लेहु पत्र मुनिराज तोहिं निमिराज बुलाये।
धनुषयज्ञ के काज राज बहु बिनय सुनाये॥
देश-देश के सुभट गण आए बहु नृप राय हैं।
वसुनायक सिय बरहिं सो, जो शिव चाप चढ़ाय हैं॥

जनकपुरमें स्वयंवर सम्पन्न हो गया। राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न चारों भाइयोंका यथायोग्य विवाह सम्पन्न हो गया। राजा दशरथने कहा—

अवधपुरी त्यागि के जबसों चली बरात।
तबहीं सो मिथिदेश का, सदा अन्न हम खात॥

मिथिलानरेशके मन्त्रीने कहा—

नाथ कहा सो सत्य पै, आज उचित अस रीत।
जूठन तहाँ गिराय के मंडप करो पुनीत॥

अब खानेकी तैयारी होने लगी। तुलसीदासने जनकपुरमें

बारातियोंको चिउड़ा-दही खिलाया है। वसुनायकजीने पचासों प्रकारका पकवान खिलाया। जनकपुरका सूपकार बोला—

सुनहु महीप नाम व्यंजन के जो कुछ भयो तयारी।
मोहनभोग मलाई खोवा पुआ खीर सुरहारी।
ठेकुआ रोट गुलगुला बारा-बरी फुलबरी ताजी।
रुचिर मुँगौरी बनी कचौरी खात होय मन राजी।
कोहुरौरी भलि बनी मेथौरी रिकवच बजका नीको।
परे मसाला चटकदार हैं लखि ललचावत जीको॥
पाक पटपरी पन्नी पापर पुआ पिराक पनारी।
माखनमिसिरी खाजा खजुरी खंड खूरमा खारी।
मोतीचूर मूरकें मोदक रसगुल्ला मजदारी।
गोझा गुलजामुन अरु बरफी बुंदिया पण्डा पेरा।
शकरपाल कचगुल्ला रेवरी जेहिमें स्वाद घनेरा।
पिस्ता दाख बदाम छोहारा गरी चिरोंजी ढेरी।
भाँति-भाँति के बने मुरब्बा चटनी बनी घनेरी।
वसुनायक व्यंजन षटरस जो बनी चारिहूँ भाँती।
बेगहि सो जेवनार करावो दशरथ सहित बराती॥

जनकपुरके राजमहलमें सारा भोजन तैयार है। जनक राजाने अपने मन्त्रीको महाराज दशरथके पास भेजा। मन्त्रीने विनम्रतापूर्वक निवेदन किया—

हे महराजधिराज सुनो तुमको मिथिलेश कहें शिर नाई।
किंकर जानि के श्री अवधेश सबै बिधि सौं मोहि दीन बड़ाई॥
पै वसुनायक है ललसा इतनी बिनती सुनिए नृपराई।
लै निज साथि बराति प्रभू हमरे गृह जूठन देहिं गिराई॥

वसुनायककी शिक्षा बहुत कम थी। फिर भी उन्होंने भोजपुरी रामलीला-जैसे बृहद् ग्रन्थकी रचना की। इससे पता चलता है कि उनपर माँ सरस्वती और हनुमान्‌जीकी बड़ी कृपा रही है।

तभी तो उन्होंने लिखा—

हनुमत कृपाकटाक्ष ते, कछु हरि गुण अनुसार।
न तु वसुनायक बावरे, अति मति मंद गँवार॥
कबि कोबिद अरु सुजन जन सबसों बिनय हमार।
बिगरो बरण सुधारिहो, लखि मोहि बाल गँवार॥

ऐसी मान्यता है कि महाकवि वसुनायकका जन्म २४ मार्च १८१० ई० को हुआ था और उस दिन श्रीरामनवमी थी। उनके पिताका नाम उग्रसिंह था और वे क्षत्रियोंकी अग्निवंशीय शाखा चौहान कुलमें अवतरित हुए थे। यह समय हिन्दी-साहित्यकी दृष्टिसे रीतिकाल था, जिसमें भक्तिगंगा मन्द पड़ने लगी थीं। ऐसेमें बाबू वसुनायक सिंहने अपने काव्यके माध्यमसे रामभक्तिकी अजस्र धारा बहा दी। अपने जन्म-स्थान, इष्टदेवके विषयमें वसुनायकजीने लिखा है—

जिला छपरा शहर सुहाई, पोस्ट ऑफिस दिघवारा गाई।
निकल गंगा अति परम सुहावन, वेद विदित निर्मल जल पावन॥
जहाँ अंबिका बसे भवानी, शोभा धाम सकल गुन खानी।
जन्मभूमि तहँ फकुली ग्रामा, उग्र सिंह है पितु को नामा॥
क्षत्रिय जाति प्रगट मम जानो, अग्निवंश चौहान बखानो।
वसुनायक है नाम हमारो, सदा मोर हनुमत रखवारो॥
हमरो इष्टदेव हनुमाना, जासु कृपा मैं चरित बखाना।

श्रीवसुनायकजी हनुमान्‌जीके बड़े भक्त थे। यद्यपि उनकी औपचारिक शिक्षा कुछ विशेष नहीं हुई थी, पर उनमें काव्यशक्ति अद्भुत थी। उन्होंने रामलीला रामायणके अतिरिक्त हनुमत्-चरित्र, हरिहरक्षेत्र-माहात्म्य, प्रह्लाद-चरित्र, हनुमान्-ध्वजा आदि अनेक रचनाएँ कीं।

बाबा वसुनायकजीने प्रथम विश्व-युद्धमें ब्रिटिश भारतीय सेनाके सिपाहीके रूपमें भाग लिया था। सेनामें रहते हुए भी ये हनुमान्‌जीकी पूजा और उनके ध्यानमें लीन रहते थे। कहा जाता है कि ऐसेमें उनकी ड्यूटी स्वयं उनके आराध्य ही किया करते थे। सेनाके बाद ये बंगालके किसी राजाके यहाँ पुलिसकी नौकरी करने लगे। वहाँ एक दिन ये अपने आराध्यके ध्यानमें मग्न थे। राजाने ड्यूटीके समय इन्हें ध्यानमग्न देखा, फिर जहाँ ड्यूटी थी, वहाँ जाकर इन्हें ड्यूटी करते देखा। इनका हस्ताक्षर भी रजिस्टरमें अंकित था। इनकी राइफलका नम्बर भी वही था। राजा और अन्य अधिकारियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। जब ये ध्यानावस्थासे विरत हुए तो जल्दी-जल्दी ड्यूटीपर पहुँचे तो अधिकारियोंसे सारी बातका ज्ञान हुआ। उन्हें इस बातका बहुत दुःख हुआ कि उनके कारण उनके आराध्यको एक तुच्छ राजाकी नौकरी करनी पड़ी। उन्होंने तुरन्त नौकरीसे इस्तीफा दिया और गाँव आकर भक्ति और साहित्य-साधनामें सारा जीवन समर्पित कर दिया।

साधकोंकी अद्भुत कथाएँ

(डॉ० श्रीप्रदीपजी आप्टे)

(१) दक्षिणेश्वरका साधु

कलकत्ताके पास स्थित दक्षिणेश्वरमें एक साधु आये हुए थे, उनका केवल भगवन्नामपर ही विश्वास था। उनके पास एक बड़ी भारी पोथी थी, जिसे वे अपने सीनेसे लगाये सदैव अपने साथ रखते थे। वे उस पोथी-को किसीको भी नहीं देते और बहुत सँभालकर रखते। इस बातको देखकर श्रीरामकृष्ण परमहंसके मनमें जिज्ञासा जागी कि आखिर यह कौन-सी पोथी है और इसमें ऐसा क्या है, जो यह साधु महाराज इसे इतना सँभालकर रखते हैं। एक दिन उन्होंने उन साधु महाराजसे इसके बारेमें पूछा, तब उन्होंने उसे खोलकर उन्हें दिखाया। उस पोथीमें शुरूसे अन्ततक केवल रामनाम ही लिखा हुआ था।

श्रीरामकृष्णने उनसे पूछा 'क्या यह वेदान्तकी पोथी है?' साधुने जवाब दिया 'सारे वेदान्तका सार इसी मन्त्रमें है—यह मैं निश्चित रूपसे मान चुका हूँ, तो फिर अन्य पोथियोंकी क्या आवश्यकता?'

(२) फुलुईका बुनकर

फुलुई, पश्चिम बंगालके श्यामबाजारमें एक बुनकर रहता था। वह एक सच्चा साधक था। बाजारमें जब ग्राहक उसके बने हुए कपड़ेका दाम पूछते थे, तो वह कहता था—'रामजीकी इच्छासे सूतकी कीमत एक रुपया। रामजीकी इच्छासे मेहनताना चार आने। रामजीकी इच्छासे रंगोंकी कीमत दो आने। रामजीकी इच्छासे कपड़ेकी कुल कीमत हुई केवल एक रुपया छः आने।'

लोगोंका उसपर बहुत विश्वास था, जिससे उसका माल तुरंत बिक जाता था। एक बार वह रातको अपने आँगनमें गुड़गुड़ी पीते हुए बैठा था। इतनेमें सामनेसे चोर आये और वे जबर्दस्ती उसे अपने साथ ले गये, उन चोरोंने चोरी की और चोरीका सारा सामान उसपर लाद दिया। उसी समय पुलिस आयी, चोर तो भाग गये, पर बुनकर मालसहित पकड़ा गया। दूसरे दिन उसे अदालतमें जजके सामने पेश किया। जजने उससे पूछा कि क्या हुआ था? इसपर उसने जवाब दिया—'हुजूर! रामजीकी इच्छासे मैं कल रात भोजन करके अपने आँगनमें बैठा हुआ था। रामजीकी इच्छासे चोर आये और मुझे जबर्दस्ती अपने साथ लेकर चोरी करने गये। उन्होंने चोरी की और सारा माल मेरे ऊपर लादकर भाग गये। रामजीकी इच्छासे पुलिस आयी, रामजीकी इच्छासे मुझे पकड़ लिया और रामजीकी इच्छासे पुलिसवालोंने मुझे आज यहाँ आपके सामने पेश किया।' उस बुनकरकी प्रामाणिकता देखकर जजने उसे रिहा कर दिया। तब वह घर आकर अपने लोगोंसे बोला—'रामजीकी इच्छासे मैं छूट गया।'

(३) कर्नाटकका साधक

गोंदवेल महाराष्ट्रमें संत श्रीब्रह्मचैतन्य गोंदवलेकर महाराजके पास कर्नाटकसे रहने एक साधक आया था। वैसे तो उसका रहन-सहन, व्यवहार आदि सब कुछ साधारण मनुष्यों-जैसा ही था, किंतु जब नाम-जपकी बात आती थी तो उसकी लगन विशिष्ट रूपसे असाधारण थी। आठों पहर उसके मुखमें राम-नाम रहता था और सदैव हाथमें जपमाला फिरती रहती थी। उसकी यह कठोर साधना देखकर सभी आश्चर्यचकित थे और कुछ ही दिनोंमें उसे अत्यन्त समाधान प्राप्त हुआ। वह साधक कई दिनोंतक श्रीमहाराजके पास गोंदवेलमें रहा और आखिरकार एक दिन उसका अन्तकाल आ गया और उसके प्राण निकल गये। संध्याका समय होनेसे कुछ अँधेरा हो गया था, श्रीमहाराजने एक मोमबत्ती जलायी और सभीको उसके अभीतक हिलते हुए होंठ और अंगुलियाँ दिखायीं और बोले—'इसे कहते हैं अभ्यास।'

वहाँ जमा हुए सभी भक्तगण यह चमत्कार देखकर दंग रह गये। उस साधकका पूर्वाभ्यास इतना पक्का था कि प्राणहीन होनेके बावजूद उसके देहको जप करनेकी इतनी आदत लग चुकी थी कि अभी भी उसके होंठ और अंगुलियाँ हिल रही थीं।

(४) भेड़ाघाटका महात्मा

जबलपुरके पास एक स्थान है भेड़ाघाट; वहाँका जलप्रपात प्रसिद्ध है। भेड़ाघाटपर एक महात्मा अपनी मस्तीमें पड़े रहते थे। एक बार हृषीकेशके महामण्डलेश्वर स्वामी चैतन्यगिरि स्नान करने नर्मदाकी तरफ निकले। तब उन्हें रास्तेमें वे युवा महात्मा पड़े हुए दिखायी दिये। स्वामीजीने उनसे कहा—'अरे महात्माजी! आप घरबार छोड़कर साधु बन गये हैं, पर भजन करते हुए नहीं दीखते और यहाँ स्वस्थ होकर शान्तिसे पड़े हुए हैं?'

यह सुनकर उस साधुने हलकी-सी आँख खोली और स्वामीजीको अपने पास बुलाया और उनसे अपना कान अपने हाथोंपर रखनेको कहा। स्वामीजीको अखण्ड रामनामकी ध्वनि सुनायी दी। फिर उस साधुने स्वामीजीको उनके कान अपने सिर, छाती और पैरोंपर भी रखनेको कहा। हर बार स्वामीजीको 'राम' नाम की अखण्ड ध्वनि सुनायी दी।

स्वामी श्रीचैतन्यगिरि तो इस चमत्कारको देखकर चकित रह गये। किंतु यह कोई चमत्कार नहीं है, यदि कोई भी साधक सच्ची लगनसे निरन्तर भगवन्नाम ले तो उसके शरीरके रोम-रोमसे अखण्ड भगवन्नाम गूँजने लगता है।

(५) हस्ताक्षर 'श्रीराम'

इन्दौरमें रामबाई नामसे एक बहुत बड़ी साधक भक्त थी, जिसने रामनामका तेरह कोटि जप किया था। आगे चलकर वह अखण्ड रामनाममें लगी रहती थी। प्रातः स्नान वगैरह करके वह नामजप करने बैठ जाती थी, जो लगभग ग्यारह बजेतक चलता था। इसके बाद श्रीरामजीकी आरती करके, उन्हें नैवेद्य दिखाकर सबको प्रसाद बाँटती थी। अनेक नये आये हुए भक्तोंके साथ वह रामनामपर चर्चा करती थी।

उसके पास आनेवाले कई भक्त लोग उसको अत्यन्त आदर भावसे देखते थे और सहयोगके रूपमें उसको मनीऑर्डर भेजा करते थे। वे मनीऑर्डर रामबाई प्राप्त करती थी और चूँकि उसे लिखना नहीं आता था, अतः पोस्टमैन जो मनीऑर्डरका फॉर्म लाता, उसपर अँगूठा लगाया करती थी। उस अँगूठा लगाये हुए निशानमें 'श्रीराम' लिखा हुआ स्पष्ट दीखता था। क्या असाधारण साधना रही होगी रामबाईकी, जिससे रामनाम उसके पूरे शरीरमें फैल गया था।

[आगेकी चार कथाएँ परमश्रद्धेय स्वामी रामसुखदासजी महाराजकी सुनायी हुई हैं—]

(६) सब तरफ राम-ही-राम

मेरेको एक सज्जन मिले थे। वे कहते थे कि मैं राम-राम करता हूँ तो राम-नामका चारों तरफ चक्कर दीखता है। ऊपर आकाशमें और सब जगह ही राम-राम दीखता है। पासमें, चारों तरफ, दसों दिशाओंमें नाम दीखता है। पृथ्वी देखता हूँ तो कण-कणमें नाम दीखता है, राम-राम लिखा हुआ दीखता है। कोई जमीन खोदता है तो उसके कण-कणमें नाम लिखा हुआ दीखता है। ऐसी मेरी वृत्ति हो रही है कि सब समय, सब जगह, सब देश, सब काल, सब वस्तु और सम्पूर्ण व्यक्तियोंमें रामनाम परिपूर्ण हो रहा है। यह कितनी विलक्षण बात है! कितनी अलौकिक बात है!

(७) सब ठाकुरजीका है

एक सेठकी बात सुनी हुई है, कहता हूँ, भगवान्‌का भक्त था वह, तो सन्त आये दर्शनके लिये, वह था गृहस्थ। पर सन्त दर्शनके लिये आये। तो दर्शन करनेके लिये सेठके नहीं आये, भगवान्‌के भक्तके दर्शनके लिये आये। भक्ति एक भाव है! तो पूछा—'सेठका मकान कौन-सा है महाराज?'

तो कहा, जो सेठकी तरह खड़ा, वह सेठ है, जाकर सन्तोंने नमस्कार किया। सेठने नमस्कार किया और कहा—'कैसे आये हो महाराज!'

'आपके दर्शन करनेके लिये!' 'और आपका मकान देखनेके लिये महाराज! यह मकान किसका है?' सन्तोंने पूछा। सेठने कहा—'महाराज! ठाकुरजीका है! भगवान्‌का है!' सन्तोंने भीतरमें मोटर है, गाड़ी है, घोड़ागाड़ी है, गाय, भैंस आदि देखा। पूछा—'ये?'

'ये महाराज ठाकुरजीके हैं!'

'ये मकान?'

'ठाकुरजीके हैं!'

ऊपर गये, बच्चे खेल रहे थे। 'भाई! ये किसके हैं?'

'महाराज, ठाकुरजीके हैं, बाल-बच्चे हैं!'

'स्त्रियाँ और परिवार किसके हैं?'

'महाराज! ठाकुरजीके हैं।'

'तो सब मकान, और ये सब?'

'ठाकुरजीके हैं।'

'भगवान्‌के हैं?'

'भगवान्‌के हैं!'

'भगवान्‌के हैं!'

ऊँचे ऊपर एक मकान बना हुआ था, ठाकुरजीका मन्दिर! 'यह?'

'यह ठाकुरजीका मन्दिर है, महाराज!'

यह ठाकुरजीका मन्दिर है, अब उसमें गये।

बाहर बढ़िया-बढ़िया सजावट! 'यह?'

'ठाकुरजीके महाराज! सब ठाकुरजीके!'

अब सोने-चाँदीके बर्तन, सब ठाकुरजीकी सेवामें! वह पूछे 'किसका है?'

'यह ठाकुरजीका है, ठाकुरजीका है!'

ठाकुरजीके गहने, कपड़े, बढ़िया पोशाक?

'यह भी ठाकुरजीके हैं!'

ठाकुरजीके सामने आकर पूछा—'ये?'

'ये मेरे हैं महाराज! ये मेरे हैं!'

ठाकुरजी 'मेरे' हैं और 'सब' ठाकुरजीका है!

कितनी विलक्षण बात है! आपने ध्यान दिया? अब बीचमें ठाकुरजीके रहनेसे सब चीज पवित्र हो गयी!

साधु हो चाहे गृहस्थ हो, भाई हो चाहे बहन हो, छोटा हो चाहे बड़ा हो, बूढ़ा हो चाहे जवान हो, महान् पवित्र हो गये।

तो यह खास बात है!

तो 'मैं भगवान्‌का हूँ!' इस तरहसे भेंट कर दो, अपने-आपको, सबको! 'मैं' और 'मेरा' दोनों! 'मैं-पना' भी भेंट ठाकुरजीके 'मेरा' भी! 'मैं ठाकुरजीका'! 'सब ठाकुरजीका'! इस तरहसे भेंट कर दो 'अपने-आपको' सबको।

(८) सफेद कपड़ेवाला साधक

मैंने एक सज्जन देखे हैं। उनके सफेद ही कपड़े थे, पर वे 'राम-राम-राम' करते रहते थे। जैसे चलते-चलते कोई पीछे रह जाता है और फिर दौड़कर आ जाता है, इसी तरहसे वे पहले धीरे-धीरे 'राम-राम-राम' करते थे, फिर बड़ी तेजीसे जल्दी-जल्दी करते थे। रातमें भी उनके पास रहनेका मेरा काम पड़ा है तो वे रातमें भी और दिनमें भी नाम जपते थे। थोड़ी देर नींद आती, नींद खुलनेपर फिर 'राम-राम-राम'। हर समय ही 'राम-राम-राम'। भोजन करते हैं तो 'राम-राम-राम'। ग्रास लेते हैं तो 'राम-राम-राम'। किसी समय जाकर देखें तो वे भगवान्‌का नाम लेते हुए मिलते थे। ऐसी लौ लग जायगी तो फिर नहीं छूटेगी। फिर यह हाथकी बात नहीं है कि आप छोड़ दें। वह एक ऐसा विलक्षण रस है कि एक बार जो लग जाता है तो फिर वह लग ही जायगा। परमात्मतत्त्व-सम्बन्धी बातें हों, परमात्म-सम्बन्धी नाम हो, भगवान्‌की लीला हो, गुण हो, प्रभाव हो, रहस्य हो—भगवान्‌का जो कुछ भी समझ आ जायगा, उसको आप छोड़ सकोगे नहीं।

(९) हँसी-दिल्लगी उड़ानेवाला साधक

एक बात मैंने सुनी है। एक आदमी यों ही हँसी-दिल्लगी उड़ानेवाला था। वह दिल्लगीमें ही कहता है कि ये देखो ये साधु! 'राम, राम, राम, राम, राम' करते हैं तो दूसरे लोग कहते हैं—'हाँ भाई! कैसे करते हैं?' तो वह फिर कहता है—'राम-राम-राम' ऐसे करते हैं। वह उठकर कहीं भी जाता तो लोग कहते हैं—हाँ बताओ, कैसे करते हैं? तो वह फिर कहता 'राम-राम-राम' ऐसे करते हैं। ऐसे कहते-कहते महाराज, उसकी लौ लग गयी। वह नाम जपने लगा। इस वास्ते—***'भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥'*** किसी तरहसे आप नाम ले तो लो। फिर देखो विलक्षणता, अलौकिकता। परंतु सज्जनो! बिना लिये इसका पता नहीं लगता।

आरोग्य-चर्चा—

प्राचीन भारतीय स्वास्थ्य-सूत्र

[Ancient Indian Health Tips]

१. अजीर्णे भोजनं विषम्।

अजीर्णके समय भोजन करना विषके समान होता है।

If Previously taken Lunch is not digested taking Dinner will be equivalent to taking Poison. Hunger is one signal that the previous food is digested.

२. अर्धरोगहरी निद्रा।

निद्रा आधे रोगका हरण कर लेती है।

Proper sleep cures half of the diseases.

३. मुद्गदाली गदव्याली।

मूँगकी दाल रोगोंका वैसे ही नाश कर देती है, जैसे सर्पिणी मनुष्यका।

Of all the Pulses, Green grams are the best. It boosts immunity. Other Pulses all have one or the other side effects.

४. अति सर्वत्र वर्जयेत्।

किसी भी कार्यमें अति वर्जित है।

Anything consumed in Excess, just because it tastes good, is not good for Health. Be moderate.

५. नास्ति मूलमनौषधम्।

जो औषध न हो सके, ऐसी कोई वनस्पति नहीं है।

There is no Vegetable that has no medicinal benefit to the body.

६. न वैद्यः प्रभुरायुषः।

चिकित्सक आयुका स्वामी नहीं होता अर्थात् वह किसीको जीवन देनेमें सक्षम नहीं है।

No doctor is capable of giving Longevity. (Doctors have limitations.)

७. चिंता व्याधिप्रकाशाय।

चिन्ता रोगोंका निमित्त होती है।

Worry aggravates ill-health.

८. व्यायामश्च शनैः शनैः।

व्यायाम धीरे-धीरे ही किया जाना चाहिये।

Do any Exercise slowly. (Speedy exercise is not good.)

९. अजवत् चर्वणं कुर्यात्।

भोजन वैसे ही खूब चबाकर करना चाहिये, जैसे कि बकरा चबाता है।

Chew your food like a goat. (Never Swallow food in a hurry. Saliva aids first in digestion.)

१०. स्नानं नाम मनःप्रसाधनकरं दुःस्वप्न-विध्वंसनम्।

स्नान मनको प्रसन्न करनेवाला तथा अनिष्ट स्वप्नों (अथवा अव्यवस्थित निद्राजन्य कष्ट)-का विनाशक होता है।

Bath removes Depression. It drives away Bad dreams.

११. न स्नानमाचरेद् भुक्त्वा।

भोजन करनेके पश्चात् (तत्काल ही) स्नान न करे।

Never take bath immediately after taking Food. (Digestion is affected)

१२. नास्ति मेघसमं तोयम्।

बरसातके जलके समान उत्तम, गुणवर्धक अन्य जल नहीं होता।

No water matches Rainwater in purity.

१३. अजीर्णे भेषजं वारि।

अपच होनेकी स्थितिमें जल औषधितुल्य है।

When there is indigestion taking plain water serves like medicine.

१४. सर्वत्र नूतनं शस्तं, सेवकान्ने पुरातने।

सभी वस्तुएँ नयी होनेपर ही प्रशंसनीय हैं, किंतु सेवक और अनाज—ये पुराने होनेपर ही प्रशंसनीय होते हैं।

Always prefer things that are fresh. Whereas Rice and Servant are good only when they are old.

१५. नित्यं सर्वे रसा भक्ष्याः।

भोजनमें सब प्रकारके अर्थात् मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय तथा तिक्त—ये छहों रस समावेशके योग्य होते हैं।

Take the food that has all six tastes.

(viz: Salt, Sweet, Bitter, Sour, Astringent and Pungent).

१६. जठरं पूरयेदर्धम् अन्नैर्, भागं जलेन च।
वायोः संचरणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत्॥

उदरका आधा भाग भोजनसे और चौथाई भाग जलसे पूर्ण करना चाहिये तथा बाकी चौथे भागको वायुके संचारहेतु खाली छोड़ देना चाहिये।

Fill your stomach half with solids, a quarter with Water and rest leave it empty.

१७. भुक्त्वा शतपदं गच्छेद् यदीच्छेत् चिरजीवितम्।

यदि मनुष्यको चिर जीवनकी कामना हो तो वह भोजनके उपरान्त सौ कदम अवश्य चले।

Never sit idle after taking food. Walk for at least half an hour.

१८. क्षुत्साधुतां जनयति।

भूख ही भोजनको सुस्वादु बनाती है।

Hunger increases the taste of food. In other words, eat only when hungry.

१९. चिंता जरा नाम मनुष्याणाम्।

चिन्ता मनुष्योंका बुढ़ापा है।

Worrying speeds up ageing.

२०. शतं विहाय भोक्तव्यं, सहस्रं स्नानमाचरेत्।

सौ काम छोड़कर भोजन करे और हजार काम छोड़कर स्नान करे।

When it is time for food, keep even 100 jobs aside.

२१. सर्वधर्मेषु मध्यमाम्।

सभी प्रकारके धर्म मार्गोंमें मध्यम मार्ग श्रेष्ठ माना गया है।

Choose always the middle path, Avoid going for extremes in anything.

बोध-कथा—

बुरी योनिसे उद्धार

प्राचीन कालमें एक सियार और एक वानर मित्र-भावसे एक ही स्थानपर रहते थे। दोनोंको अपने पूर्वजन्मका स्मरण था। एक समय वानरने सियारको श्मशानमें घृणित शवको खाते देखकर पूछा, 'मित्र! तुमने पूर्वजन्ममें क्या किया था, जिससे तुम्हें इतना निषिद्ध तथा घृणित भोजन करना पड़ता है?' सियारने कहा, 'मित्र! मैं पूर्वजन्ममें वेदोंका पारंगत विद्वान् और समस्त कर्मकलापोंका ज्ञाता वेदशर्मा नामका ब्राह्मण था। उस जन्ममें मैंने एक ब्राह्मणको धन देनेका संकल्प किया था, पर उसको दिया नहीं, उसीसे इस बुरी योनि तथा बुरे आहारको प्राप्त हुआ हूँ। प्रतिज्ञा करके यदि ब्राह्मणको वह वस्तु नहीं दी जाती तो उसका दस जन्मोंका पुण्य तत्काल नष्ट हो जाता है; अब तुम बताओ, तुम किस कर्मविपाकसे वानर हुए?'

वानर बोला—'मैं भी पूर्वजन्ममें ब्राह्मण ही था। मेरा नाम वेदनाथ था और मित्र! पूर्वजन्ममें भी हमारी-तुम्हारी घनिष्ठ मित्रता थी। यद्यपि तुम्हें यह स्मरण नहीं, तथापि पुण्यके गौरवसे मुझे उसकी पूर्णतया स्मृति है। उस जन्ममें मैंने एक ब्राह्मणका शाक चुराया था, इसलिये मैं वानर हुआ हूँ। ब्राह्मणका धन लेनेसे नरक तो होता ही है, नरक भोगनेके बाद वानरकी ही योनि मिलती है। ब्राह्मणका धन अपहरण करनेसे बढ़कर दूसरा कोई भयंकर पाप नहीं। विष तो केवल खानेवालेको ही मारता है, किंतु ब्राह्मणका धन तो समूचे कुलका नाश कर डालता है। बालक, दरिद्र, कृपण तथा वेद-शास्त्र आदिके ज्ञानसे शून्य ब्राह्मणोंका भी अपमान नहीं करना चाहिये; क्योंकि क्रोधमें आनेपर वे अग्निके समान भस्म कर देते हैं।'

सियार और वानर इस प्रकार बातचीत कर ही रहे थे कि दैवयोगसे किंवा उनके किसी पूर्व-पुण्यसे सिन्धुद्वीप नामक ऋषि स्वेच्छासे घूमते हुए वहीं पहुँच गये। उन दोनों मित्रोंने मुनिको प्रणाम किया और अपनी कथा सुनाकर उद्धारका रास्ता पूछा। ऋषिने बड़ी देरतक मन-ही-मन विचारकर कहा—'तुम दोनों श्रीरामचन्द्रजीके धनुष्कोटितीर्थमें जाकर स्नान करो। ऐसा करनेसे पापसे छूट जाओगे।'

तदनुसार सियार और वानर तत्काल ही धनुष्कोटिमें गये और वहाँके जलसे स्नानकर सब पापोंसे मुक्त होकर श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ होकर देवलोकमें चले गये।* [स्कन्दपुराण, ब्राह्मखण्ड, सेतुमाहात्म्य, अ० ३९]

* वचनभंग और चोरीसे परहेज तथा तीर्थस्नानका माहात्म्य इस बोधकथाका सारांश है—सम्पादक

तीर्थ-दर्शन—

महाभारतकालीन वनखण्डेश्वर शिव-मन्दिर, दतिया

(डॉ० श्रीरामेश्वर प्रसादजी गुप्त)

मन्दिर-निर्माण और मूर्ति प्रतिष्ठापन-क्रियाका दिग्दर्शन रामायण और महाभारतमें प्राप्त होता है। स्वयं पुरुषोत्तम श्रीरामने रामेश्वरम्‌में श्रीमहादेवजीकी स्थापना की थी। महाभारतकालमें उत्तर भारतमें श्रीकेदारनाथकी प्रतिष्ठा हुई थी। भारतीय एकताको प्रबल सम्बल भी मिला। पुराणकालमें सम्पूर्ण भारतमें शिव, शक्ति और अन्यान्य देवोंकी मूर्तियोंकी स्थापना और उनके मन्दिरोंके निर्माणकी प्रक्रिया बहुतायतसे सम्पन्न हुई।

'दतिया' महाभारतकालीन राजा दन्तवक्त्रसे जुड़ी हुई प्राचीन नगरी है। इस नगरीकी तीन शिवमूर्तियाँ महाभारत-कालसे सम्बन्धित हैं। प्रथम 'वनखण्डेश्वर' शिव, जो वर्तमानमें पीताम्बरापीठ-परिसरके मध्यमें प्रशोभित हैं। द्वितीय 'मड़ियाके महादेव' नामसे प्रख्यात हैं। यह दतिया नगरके बड़ा बाजारमें प्रतिष्ठित हैं। मान्यता है कि इस मन्दिर एवं मूर्तिकी स्थापना महाभारतकालीन राजा दन्तवक्त्रने ही की थी। दतियाका तृतीय सुप्रसिद्ध शिवमन्दिर बम-बम महादेवका है, वह भी महाभारतकालीन ही मान्य है।

माँ पीताम्बराकी प्राणप्रतिष्ठाके पूर्व यह स्थान वनखण्डेश्वर महादेव या वनखण्डेश्वर शिवमन्दिर नामसे ही प्रसिद्ध मन्दिर था। पहले इस मन्दिरके चारों ओर सघन वृक्षोंसे सम्पन्न वन-परिक्षेत्र था। वनोंकी सम्पन्नता एवं शिवजीके प्रतिष्ठापनसे इस स्थानका नाम वनखण्डेश्वर प्रचलित था। यहाँ सुस्थित मन्दिरमें महादेव शिवजी अपने सम्पूर्ण परिवारके साथ प्रतिष्ठित हैं। जनश्रुति एवं मान्यता है कि यह शिवलिंग नर-मुण्डपर विराजित है। यहाँ प्रतिष्ठाप्राप्त भगवान् शिवके विषयमें एक सुरम्य श्लोक स्फटिक-पट्टिकापर उल्लिखित है। उक्त पट्टिका मन्दिरकी दीवारमें जटित है। उल्लेख है कि

नमस्तमस्वतीकान्तखण्डमण्डितमौलये ।
तापान्धकारनिर्वेदखेदविच्छेदवेदिने ॥

अर्थात् रात्रिके स्वामी चन्द्रमाके खण्ड अर्थात् द्वितीयाके चन्द्रसे मण्डित मौलिवाले एवं तापान्धकारके विषादके खेदके उन्मूलनके ज्ञाता भगवान् शिवजीको नमस्कार है।

वनखण्डेश्वरका शिव-मन्दिर स्फटिकके स्तम्भोंसे भव्य रूपसे सुशोभित है। यहाँ प्रतिष्ठित शिवलिंग उत्तराभिमुख है तथा प्रदीप्त सुषमासे आभावान् है। इनकी पिण्डीपर सर्प लिपटा है और मानो शिवजीके प्रति अपने समर्पितभावको प्रकट कर रहा है। शिवलिंगके समक्ष उनका वाहन नन्दी अपने भव्य विग्रहको द्योतित कर रहा है। यहाँ प्रतिष्ठित नन्दीकी यह विशेषता है कि इनकी पीठपर एक चरण अंकित है। इस प्रकार यह नन्दीजी पाँच पैरके नादिया हैं। इन नन्दीके दोनों शृंग कपिला गायोंके समान पीछेको मुड़े हुए हैं। इस मन्दिरमें शिवलिंगके दायें अन्नपूर्णा देवी माँ पार्वतीजी एक लघु भव्य मण्डपमें सुशोभित हैं। इसी मन्दिरमें शुभ्रवसना माँ पार्वतीजीके दायें श्रीवीरभद्र तथा बायीं ओर श्रीकीर्तिमुख अपने लघु रूपमें प्रतिष्ठित हैं। माँ पार्वतीके मण्डपके पास ही श्रीगणेशजीका मण्डप है, जिसमें विघ्नेश्वर गणपतिजी महाराज विराजमान हैं। शिवलिंगके बायें भव्य मण्डपमें कमलासनपर श्रीस्वामी कार्तिकेयजी प्रतिष्ठित हैं। उक्त सभी विग्रह गौरवर्ण हैं। ये सभी अपनी सुन्दर प्रभा एवं आभासे दर्शनार्थियोंके

मनको मुग्ध कर देते हैं। स्वामी कार्तिकेयके पार्श्वमें ही एक लघु, किंतु दीप्तिपूर्ण मण्डपमें अष्टभुजाधारिणी माता दुर्गा देवी अपने श्यामल वर्णकी आभासे देदीप्यमान रूपसे प्रदृष्ट हैं। माँ दुर्गाका मण्डप अन्य उक्त मण्डपोंसे ऊँचा है। इन माँ दुर्गाजीकी अद्भुत प्रदीप्तिमयी छटा दर्शकोंकी मनोदशाको श्रद्धान्वित करती हुई, उनमें भक्तिभाव उत्पन्न करती है।

वनखण्डेश्वरके इस शिव-मन्दिरमें भरपूर आध्यात्मिक दर्शनका सहज परिज्ञान होता है। शिव-परिवारके इस दर्शनसे पंचमकार, षड्विकार और नवग्रहोंके प्रकोप नष्ट होते हैं तथा पंचमहाव्रतका फल प्राप्त होता है एवं षड्सम्पत्तियाँ शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धाकी उपलब्धि होकर नवग्रहोंकी सुदृष्टि एवं कृपा प्राप्त होती है।

माँके मन्दिरके आगेकी भित्तिपर मन्दिरके बाहरकी ओर स्फटिकपर दशमहाविद्याओंके नाम इस प्रकार उल्लिखित हैं। यथा—

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा॥
बगला सिद्धविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका।
एता दश महाविद्याः सिद्धविद्याः प्रकीर्तिताः॥

माँ पीताम्बरा बगलामुखीका ध्यान भी यहाँ इस प्रकार उल्लिखित है—

मध्ये सुधाब्धिमणिमण्डपरत्नवेद्याम्
सिंहासनोपरिगतां परिपीतवर्णाम्।
पीताम्बराभरणमाल्यविभूषिताङ्गीं
देवीं नमामि धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम्॥

माँ पीताम्बरा देवीकी प्रतिष्ठाके उपरान्त वनखण्डेश्वर स्थान पीताम्बरापीठके नामसे सुविख्यात हो गया। वनखण्डेश्वरके इस परिसरमें दिनांक १३-६-१९७८ ई० को माँ धूमावतीकी प्राणप्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। माँ पीताम्बरा और माँ धूमावतीके दर्शनार्थ आज देश-विदेशसे दर्शनार्थी आकर इनके दर्शनसे अपनेको धन्य मानते हैं। वर्तमानमें पीताम्बरापीठ, दतिया विश्वके दर्शनार्थियोंके लिये पुण्य तीर्थक्षेत्र बन गया है। ऐसी जनश्रुति है कि सप्त चिरजीवियोंमें-से एक अश्वत्थामाजी आज भी यहाँ दर्शनार्थ आते हैं। अस्तु, महाभारतकालीन वनखण्डेश्वर शिव-मन्दिर तथा माँ पीताम्बरापीठ, दतिया सिद्धपीठके रूपमें आज विश्वप्रसिद्ध हैं एवं भक्तों तथा दर्शनार्थियोंके लिये ये श्रद्धाके केन्द्र बने हुए हैं।

नजरिया

एक दिन एक अमीर व्यक्ति अपने बेटेको एक गाँवकी यात्रापर ले गया। वह अपने बेटेको यह बताना चाहता था कि हम कितने अमीर और भाग्यशाली हैं, जबकि गाँवके लोग कितने गरीब हैं।

उन्होंने कुछ दिन एक गरीबके खेतपर बिताये और फिर अपने घर वापस लौट आये। रास्तेमें अमीर व्यक्तिने बेटेसे पूछा—'तुमने देखा, लोग कितने गरीब हैं और वे कैसा जीवन जीते हैं?' बेटा बोला—'हाँ, मैंने देखा।'

'हमारे पास एक कुत्ता है और उनके पास चार हैं। हमारे पास एक छोटा-सा स्वीमिंग पूल है और उनके पास एक पूरी नदी है। हमारे पास रातको जलानेके लिये विदेशोंसे मँगायी गयी महँगी रोशनी है और उनके पास रातको चमकनेवाले अरबों तारे हैं। हम अपना खाना बाजारसे खरीदते हैं और वे अपना खाना खुद अपने खेतमें उगाते हैं। हमारा छोटा-सा परिवार है, जिसमें पाँच लोग हैं, जबकि उनका पूरा गाँव उनका परिवार है। हमारे पास खुली हवामें घूमनेके लिये एक छोटा-सा गार्डन है और उनके पास पूरी धरती है, जो कभी समाप्त नहीं होती। हमारी रक्षा करनेके लिये हमारे घरके चारों तरफ बड़ी-बड़ी दीवारें हैं और उनकी रक्षा करनेके लिये उनके पास अच्छे-अच्छे दोस्त हैं।'

अपने बेटेकी बात सुनकर अमीर व्यक्ति कुछ बोल नहीं पा रहा था।

बेटेने अपनी बात समाप्त करते हुए कहा—'धन्यवाद पिताजी, मुझे यह बतानेके लिये कि हम कितने गरीब हैं।'

संत-चरित—

भक्तिमती आण्डाळ या रंगनायकी

प्राचीन कालमें दक्षिण भारतमें कावेरी-तटपर स्थित एक गाँवमें विष्णुचित्त नामके एक परम वैष्णव भक्त रहते थे। वे बड़े ही आस्तिक एवं धर्मनिष्ठ पुरुष थे। अहर्निश वे भगवद्भजन, हरिकीर्तन और नाम-जपमें निरत रहते थे। उन्हें भगवान्‌के सिवा और कुछ सुहाता ही न था। बड़ा ही सुरम्य उनका एक तुलसीका उपवन था। वे नित्य प्रात:काल तुलसीके थाल्होंमें जल डालते और तुलसीदलकी ही माला बनाकर भगवान्‌का शृंगार करते। एक समय प्रात:काल जब वे घड़ेमें जल भरकर तुलसी सींचने गये, तब वहाँ उन्हें एक परम मनोहर नवजात कन्या दिखायी पड़ी। उन्होंने बड़े स्नेहसे उस बालिकाको उठा लिया तथा उसे वटपत्रशायी भगवान् नारायणके चरणोंमें रखकर कहा—'प्रभो! यह तुम्हारी ही सम्पत्ति है, जो तुम्हारी सेवाके लिये आयी है। इसे अपने पाद-पद्मोंमें आश्रय दो।' इसपर मूर्तिमेंसे शब्द आया—'इस लड़कीका नाम 'कोदई' रखो और इसे अपनी ही लड़की मानकर इसका लालन-पालन करो।' 'कोदई' का अर्थ है—'फूलोंके हारके समान कमनीय।' इसी लड़कीको आगे चलकर जब भगवान्‌का प्रेम और उनकी कृपा प्राप्त हो गयी, तब लोग 'आण्डाळ' कहने लगे थे।

रातमें भगवान्‌ने स्वप्नमें विष्णुचित्तजीको कन्याका सारा हाल बताया—'वाराहावतारमें मैंने पृथ्वीका उद्धार किया था, तब पृथ्वीने मुझसे पूछा कि 'आपको किस प्रकारकी पूजा परम प्रिय है?' उस समय मैंने बतलाया था कि 'मुझे नामकीर्तन तथा पत्र-पुष्प-फल-तोयकी पूजा सर्वप्रिय है। मुझे प्राप्त करनेके लिये भक्त मेरे नामका कीर्तन करे और प्रेम-भक्तिके साथ मेरी पूजा-अर्चा करे।' मेरी उस बातको हृदयमें धारणकर पृथ्वी इस कन्याके रूपमें प्रकट हुई है और अब तुम्हारे घरमें बसना चाहती है। यदि तुम इस कन्याकी सेवा करते रहोगे तो अवश्य परम-पदको प्राप्त होओगे।' ब्राह्मण-ब्राह्मणी इस कन्याको पाकर परम प्रसन्न हुए। यथासमय उन्होंने कन्याके जातकर्मादि संस्कार कराये।

लड़की जब बोलने लगी, तब उसके मुखसे 'विष्णु' के अतिरिक्त कोई दूसरा नाम ही नहीं निकलता था। जब वह कुछ सयानी हुई, तब भगवान्‌के गीत गाने लगी। पिताके मन्दिर चले जानेपर वह उनके पीछे उपवनकी रखवाली करती और भगवान्‌की पूजाके लिये फूलोंके हार गूँथती। कन्याकी बनायी मालाको लेकर विष्णुचित्त ब्राह्मण श्रीरंगनाथजीके मन्दिरमें जाते और माला भगवान्‌को चढ़ा आते। जब वह कुछ और बड़ी हुई, तब भगवान् रंगनाथको अपने पतिके रूपमें भजने लगी। वह अपने प्रियतमके प्रेममें अपने-आपको इतना भूल जाती कि भगवान्‌के लिये गूँथे हुए हारको स्वयं पहनकर दर्पणके सम्मुख खड़ी हो जाती और अपने सौन्दर्यकी स्वयं प्रशंसा करती हुई कहती—'क्या मेरा सौन्दर्य मेरे प्रियतमको आकर्षित कर सकेगा?'

एक दिन मन्दिरके पुजारीने विष्णुचित्तकी माला यह कहकर लौटा दी कि उसमें किसी मनुष्यके सिरका बाल लगा हुआ है। ब्राह्मणको यह सुनकर बड़ा दु:ख हुआ। उन्होंने ताजे पुष्प चुने, नवीन हार बनाया और भगवान्‌को अर्पण किया। दूसरे दिन भी पुजारीने कहा कि माला कुछ मुरझायी हुई है। विष्णुचित्तने अपने मनमें

सोचा कि अवश्य ही इसमें कोई-न-कोई रहस्य होना चाहिये। वे जब इसका कारण घरपर ढूँढ़नेमें लगे, तब उनकी दृष्टि अकस्मात् अपनी लड़कीपर गयी। उन्होंने देखा कि वह परदेके पीछे नवीन पुष्पोंका हार पहने दर्पणके सम्मुख खड़ी है और मन-ही-मन अपने प्रियतम भगवान्‌से कुछ बातें कर रही है। वे दौड़कर लड़कीके पास गये और चिल्लाकर बोले—'बेटी! यह तूने क्या किया? तू पागल तो नहीं हो गयी, जो भगवान्‌के लिये तैयार किये हारोंको स्वयं धारण करके जूँठा कर रही है?' विष्णुचित्तने फिरसे दूसरे हार बनाये और प्रभुको चढ़ाये, परंतु आण्डाळ तो अपनेको प्रभुके चरणोंमें समर्पित कर चुकी थी। समर्पण जब सम्पूर्ण होता है, तब देवताको स्वीकार होता ही है। आवश्यकता इस बातकी है कि हृदयको प्रभुके चरणोंमें चढ़ाते समय वह सर्वथा शून्य, सर्वथा निरावरण रहे। आण्डाळका मधुर और सम्पूर्ण समर्पण भला भगवान्‌को अंगीकार क्यों न हो? उसी दिन रातको विष्णुचित्तको भगवान्‌ने स्वप्नमें आदेश दिया। 'मुझे आण्डाळकी पहनी हुई माला धारण करनेमें विशेष सुख मिलता है, इसलिये वही हार मुझे चढ़ाया करो।' अब तो विष्णुचित्तको अपनी कन्याके महत्त्वका पूरा निश्चय हो गया। कुछ दिनों बाद आण्डाळकी धारण की हुई मालाओंको ही वे भगवान्‌को निवेदन करने लगे।

आण्डाळ अहर्निश प्रभुके प्रेममें मतवाली रहती। एक दिन उसने अपने धर्मपितासे बड़े ही अनुनय-विनयके साथ दिव्य धामों तथा तीर्थस्थानोंके विषयमें पूछा। विष्णुचित्तका चित्त प्रभुके चरणोंका अनुरागी था ही। उन्होंने बहुत प्रेम और श्रद्धाभरे शब्दोंमें अपनी बेटीसे भगवान्‌के वैकुण्ठ आदि दिव्य धामोंके नाम बतलाये और अन्तमें कहा, 'दक्षिणमें कावेरीके तटपर भगवान् श्रीरंगनाथका वास है।' भगवान् श्रीरंगनाथका नाम सुनते ही आण्डाळको रोमांच हो आया और उसकी आँखोंसे प्रेमाश्रुओंकी धारा बरस पड़ी। उसने विह्वल होकर अपने इष्टदेवके सम्बन्धमें अधिक जाननेकी इच्छा प्रकट की। तब विष्णुचित्त सुनाने लगे—'इक्ष्वाकुके यज्ञकी पूर्तिके लिये ब्रह्माजीकी प्रार्थनापर भगवान् विष्णु वहाँ प्रकट हुए। भगवान्‌का साक्षात्कार हो जानेपर इक्ष्वाकु कृतार्थ हो गये और ब्रह्माजीकी आज्ञासे वे सरयूके तटपर अयोध्यामें तपस्या करने लगे। तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माने इक्ष्वाकुसे वर माँगनेके लिये कहा। इक्ष्वाकुने यही वर माँगा कि 'भगवान् विष्णुका यहीं अवधमें अवतार हो और वे श्रीरंगनाथजीके रूपमें उनके कुलदेव रहें।' ब्रह्माने उन्हें मुँहमाँगा वरदान दे दिया।'

'भगवान् श्रीरामचन्द्रजी जब लंकाको जीतकर अयोध्या आये, तब उनके साथ विभीषण भी पधारे थे। वे जब लंका जाने लगे, तब उन्होंने भगवान्‌से कहा कि 'आपका वियोग मेरे लिये सर्वथा असह्य है। अतएव मुझे ऐसी कोई वस्तु दीजिये, जिससे मेरे हृदयको धीरज हो।' विभीषणके अटल प्रेमको देखकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें श्रीरंगनाथजीकी प्रतिमा दी। जब विभीषण कावेरी-तटपर आये, तब वे किसी दूसरे यज्ञ-अनुष्ठानमें संलग्न हो गये। फिर भगवान् श्रीरंगनाथजीने लंका जाना अस्वीकार कर दिया और विभीषणने वहीं भगवान्‌की मूर्ति स्थापित की। विभीषण भगवान्‌की पूजा-अर्चाके लिये नित्य लंकासे यहाँ आया करते थे।

भगवान् श्रीरंगनाथका वर्णन सुनकर आण्डाळकी उत्कण्ठा और भी तीव्र हो गयी। उसने पितासे भगवान्‌की प्राप्तिका साधन पूछा। अब आण्डाळके लिये एक क्षणका वियोग भी असह्य था।

आण्डाळकी विरहव्यथा बढ़ती ही गयी। उसके प्राण रात-दिन जीवनधनमें अटके रहते थे। वह उन्हींका नाम जपती, उन्हींका कीर्तन करती और उन्हींकी धुनमें डूबी रहती। उसकी आँखोंमें, हृदयमें, प्राणोंमें, रोम-रोममें श्रीरंगनाथजी ही छाये हुए थे। वह रोती और दहाड़ मारकर छाती पीटती—'प्रियतम! स्वप्नमें आकर तुमने मिलनेका जो उपक्रम किया है, उससे

तो मेरे भीतरकी विरहाग्नि और भी धधक उठी है। यों तड़पानेमें तुम्हें कौन-सा रस मिलता है। हाय! एक क्षण भी तुम्हारे बिना रहा नहीं जाता। देव! मेरे जीवनधन! यदि मेरे प्राणोंकी इस आकुल तड़पसे तुम्हारा कठोर हृदय तनिक भी पसीजे तो अभी आकर मुझे अपने चरणोंमें स्वीकार कर लो। प्रभो! ओ मेरे प्राणाधार! सीताकी सुधि लेनेके लिये तुमने समुद्रमें पुल बँधवाया और रावणको मारकर उसे अयोध्या लौटा लाये। शिशुपालका वध करके रुक्मिणीको अपनी शरणमें ले लिया। द्रौपदी, गज, गणिका और गोपियोंकी टेर सुन ली; परंतु मेरी ही बार इतना विलम्ब क्यों कर रहे हो? मैं जानती हूँ कि मैं अपराधिनी हूँ; परंतु जैसी भी हूँ, तुम्हारी हूँ—तुम्हीं मेरे प्राणवल्लभ, हृदयेश्वर, जीवनसर्वस्व और अवलम्ब हो! तुम्हें छोड़कर किसकी शरणमें जाऊँ? जिस प्रकार चकोर चन्द्रमाको और चातक श्यामघनको चाहता है, वैसे ही मेरा हृदय तुम्हें देखनेके लिये व्याकुल है।'

आण्डाळ सदा अपने शरीरसे ऊपर उठी रहती थी, वह अपने बाहर-भीतर सर्वत्र अपने प्राणवल्लभ प्रभुके अतिरिक्त और किसी वस्तुको देखती ही न थी। वह शरीरसे विष्णुचित्तके बगीचेमें रहती थी; किंतु उसका मन नित्य वृन्दावनमें विचरता रहता था। वह गोपियोंके साथ खेलती और मिट्टीके घरौंदे बनाती। इतनेमें ही श्रीकृष्ण आकर उसके घरौंदोंको ढहा देते और हँसने लगते। कभी वह गोपियोंके साथ सरोवरमें स्नान करने लगती और प्रियतम श्रीकृष्ण आकर उन सबके वस्त्रोंको उठाकर ले जाते और कदम्बपर चढ़कर बैठ जाते। कभी-कभी वह मनसे ही वृन्दावनमें विचरती और रास्ता चलनेवालोंसे पूछती, 'क्या तुमने मेरे प्राणवल्लभको इधर कहीं देखा है? क्या किसीको मेरे कमलनयनका पता है?' और अपने-आप ही अपने प्रश्नोंका उत्तर भी देती—'अजी, देखा क्यों नहीं? वह तो वृन्दावनमें बाँसुरी बजाकर गोपियोंके साथ विहार कर रहा है।'

वसन्त ऋतुमें वह कोयलको सम्बोधन करके बड़े करुण स्वरमें कहती—'अरी कोयल! मेरा प्राणवल्लभ मेरे सामने क्यों नहीं आता? वह मेरे हृदयमें प्रवेश करके मुझे अपने वियोगसे दुखी कर रहा है। मैं तो उसके लिये इस प्रकार तड़प रही हूँ और उसके लिये यह सब मानो निरा खिलवाड़ ही है।'

एक दिन जब वह अपने प्रियतम भगवान्‌के विरहमें अत्यन्त व्याकुल हो गयी, भगवान् रंगनाथने स्वप्नमें मन्दिरके अधिकारियोंको दर्शन देकर कहा—'मेरी प्रियतमा आण्डाळको मेरे पास ले आओ।' इधर उन्होंने विष्णुचित्तको भी स्वप्नमें दर्शन देकर कहा—'तुम आण्डाळको लेकर शीघ्र मेरे पास चले आओ, मैं उसका पाणिग्रहण करूँगा।' यही नहीं, उनहोंने स्वप्नमें आण्डाळको भी दर्शन दिये और उसने देखा कि मेरा विवाह बड़ी धूमधामके साथ श्रीरंगनाथजीके साथ हो रहा है। उसका स्वप्न सच्चा हो गया। दूसरे ही दिन श्रीरंगजीके मन्दिरसे आण्डाळ और उसके धर्मपिता विष्णुचित्तको लेनेके लिये कई पालकियाँ और दूसरे प्रकारका लवाजमा भी आया। ढोल बजने लगे, शंखकी ध्वनि होने लगी, वेदपाठी ब्राह्मण वेद पढ़ने लगे और भक्तलोग आण्डाळ और उसके स्वामी श्रीरंगनाथजीकी जय बोलने लगे। आण्डाळने प्रेममें मतवाली होकर मन्दिरमें प्रवेश किया और तुरन्त वह भगवान्‌की शेषशय्यापर चढ़ गयी। इतनेमें ही लोगोंने देखा कि सर्वत्र एक दिव्य प्रकाश छा गया और उस प्रकाशमें देवी आण्डाळ सबके देखते-ही-देखते बिजली-सी चमककर विलीन हो गयी। प्रेमी और प्रेमास्पद एक हो गये। आण्डाळके जीवनका कार्य आज पूरा हो गया। वह भगवान् नारायणमें जाकर मिल गयी।

दक्षिणके वैष्णव-मन्दिरोंमें आज भी आण्डाळके विवाहका उत्सव प्रतिवर्ष सर्वत्र मनाया जाता है। विष्णुचित्तने भी अपना शेष जीवन भगवान् श्रीरंगनाथ और उनकी प्रियतमा श्रीआण्डाळदेवीकी उपासनामें व्यतीतकर भगवद्धामको प्रयाण किया।

गो-चिन्तन—

गोभक्त गोविन्ददास

सतारा जिलेके कराड़ तालुकेमें कासार सिरंबा नामक एक ग्राम है। यहाँके रहनेवाले गोविन्ददास महाराज महान् गोभक्त थे। इनके मठमें इनके बैठने और सोनेके स्थानको छोड़ बाकी सब जगह गौओंके गोठोंसे ही भरी हुई थी। इन गौ-बछड़ोंकी सेवा करनेमें ही इनका सारा दिन बीतता था। एक बार इनकी कुछ गौएँ खो गयीं। इन्होंने तहसीलदारकी कचहरीमें दरख्वास्त दी और टहलते-टहलते पासके बेलवड़ बाजारमें चले गये तो खोयी हुई गौओंमेंसे कई इन्हें कसाइयोंके हाथोंमें दीख पड़ीं। इन्होंने पुलिसमें इत्तिला दी। कसाइयोंने यह दिखानेके लिये कि गौएँ हमारी हैं, कुछ सबूत पेश किये। इनसे पूछा गया, 'आपके पास कोई सबूत?' इन्होंने जवाब दिया, 'मेरी गौएँ ही मेरा सबूत हैं! वे ही मेरी गवाही देंगी।' यह सुनकर बहुत लोग हँस पड़े।

जो बोल नहीं सकती, वह गवाही कैसे दे सकती हैं? पर श्रद्धा-भक्तिके लिये कुछ भी असम्भव नहीं है। जड़-पाषाणकी मूर्ति यदि भोग पा सकती है, तो विश्वजननी गोमाता अपने भक्तकी ओरसे गवाही क्यों नहीं दे सकतीं? तहसीलदारने जब पूछा कि आपकी तरफसे कौन गवाह हैं, तो गोविन्ददासजीने गौओंकी तरफ अँगुलीसे इशारा किया। तहसीलदारने कहा—'आप गौओंकी तरफ इशारा करते हैं, पर ये गौएँ आपकी हैं, इसका सबूत क्या है?' गोविन्ददासजीने उत्तर दिया, 'सबूत? जगत्‌की सब गौएँ हम तपस्वी ब्राह्मणोंकी हैं। आप चाहें तो शास्त्रोंको देख सकते हैं।' तहसीलदारने कहा—'यह सबूत तो द्वापरयुगका है, आज इससे कोई मतलब नहीं हासिल हो सकता। ये गौएँ आपकी हैं तो कोई रसीद-पुरजा या और कोई कागज आपके पास ऐसा है, जो आप सबूतमें दाखिल कर सकें?' गोविन्ददासजीने कहा—कागज-वागज मेरे पास कुछ नहीं है। ये गोमाताएँ ही मेरी गवाह हैं। मैं इन्हें बुलाता हूँ, ये यदि मेरे पास आ जायँ और अपना प्यार दिखा दें तो आप मानेंगे या नहीं?'

तहसीलदार तथा प्रतिपक्षी लोग जब राजी हुए तब गोविन्ददासजीने गौओंको पुकारा, 'गंगा, गोदा, यमुना, कृष्णा, सावित्री, मेरी माता, आओ, आओ, मेरी माता, आओ!' इस तरह पुकारते हुए ज्यों ही उन्होंने उन गौओंको अपने पास आनेके लिये हाथसे इशारा किया, त्योंही सब गौएँ अपने बन्धन तुड़ाकर उनके पास दौड़ी गयीं और उनका बदन चाटने लगीं। सब लोग और कसाई भी देखकर दंग रह गये और गौएँ गोविन्ददासजीके पीछे-पीछे मठके अन्दर अपने गोठोंमें आ गयीं। बेलवड़के बाजारकी तरफ तबसे गोविन्ददासजीकी विशेष दृष्टि हो गयी।

१० अक्टूबर १९१७ ई० का दिन था। गोविन्ददासजी खोयी हुई गौओंको देखते बेलवड़ बाजारमें पहुँचे। देखते-देखते एक गौके सामने ठहर गये और समीप ही खड़े कुछ गोसेवकोंसे कहने लगे, 'देखो, यही तो मेरी कपिली (कपिला) है। अब कैसे क्या हो? इस तरह कितनी गौएँ लापता हो जाती होंगी। कोई सुध लेनेवाला नहीं रहा। यह देखो, मेरी धौरी! वह वहाँ मेरी कबरी भी है! हरे! हरे! भगवन्! आप कबतक मेरी परीक्षा करेंगे? इतने हिन्दुओंके जीवित रहते गौओंकी गर्दनोंपर छुरी चले? ये क्या हिन्दू हैं? पर मैं इन्हें क्या कहूँ? मैं स्वयं क्या हूँ? मैं हिन्दू, हिन्दुओंमें भी ब्राह्मण हूँ। मेरे देखते यह सब हो रहा है और मैं जी रहा हूँ। धिक्कार है ऐसे जीनेको! गोपालकृष्ण! अब इस जीवनको समाप्त करनेमें क्यों देर लगा रहे हो? हा! मेरी कपिली!' ऐसे ही दु:खोद्गार उनके मुखसे निकल रहे थे और वे इधर-से-उधर चक्कर लगा रहे थे। सैकड़ों बार उन्होंने कपिलाका नाम लिया। जो लोग वहाँ जमा थे, वे कोई भी अब उन्हें नहीं दिखायी देते थे। उनके सामने सब ओर कपिली, धौरी, कबरीकी ही मूर्तियाँ खड़ी थीं। उनकी दृष्टि उन्हींकी ओर लग गयी। उनकी देह जड़ हो गयी, एक जगह स्थिर हो गये, एक बार आकाशकी ओर देखा और फिर अपनी गौओंकी ओर देखा, हाथ जोड़कर प्रणाम किया, उपस्थित गोसेवकोंको प्रणाम किया। भगवान् गोपालकृष्णको एक बार पुकारा और 'हा! मेरी कपिली' कहते हुए धड़ामसे धरतीपर गिर पड़े। यह देखकर लोग इधर-उधर भागने लगे और आठ-दस गौएँ बन्धन तुड़ाकर उनके पास आ गयीं और उनका बदन चाटने लगीं। पर वे अब कहाँ थे? गौ और गोपालका ध्यान करते हुए वे इहलोकसे चले गये। सिरंबा गाँवमें गोविन्ददासजीका अन्त्यसंस्कार हुआ और बेलवड़में उनका स्मारक-मन्दिर बना है।

सुभाषित-त्रिवेणी

बुद्धिमान् व्यक्तिके गुण
[Qualities of a wise person]

यो नोद्धतं कुरुते जातु वेषं
न पौरुषेणापि विकत्थतेऽन्यान्।
न मूर्च्छितः कटुकान्याह किञ्चित्
प्रियं सदा तं कुरुते जनो हि॥

जो कभी उद्दण्डका-सा वेष नहीं बनाता, दूसरोंके सामने अपने पराक्रमकी भी डींग नहीं हाँकता, क्रोधसे व्याकुल होनेपर भी कटुवचन नहीं बोलता, उस मनुष्यको लोग सदा ही प्यारा बना लेते हैं।

A person who does not try to look formidable all the time, who does not all along brag to others about his chivalry and mite, one who even though highly upset and angry, does not utter unpleasant words, endears himself to everyone.

न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं
न दर्पमारोहति नास्तमेति।
न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यं
तमार्यशीलं परमाहुरार्याः॥

जो शान्त हुई वैरकी आगको फिर प्रज्वलित नहीं करता, गर्व नहीं करता, हीनता नहीं दिखाता तथा 'मैं विपत्तिमें पड़ा हूँ' ऐसा सोचकर अनुचित काम नहीं करता, उस उत्तम आचरणवाले पुरुषको आर्यजन सर्वश्रेष्ठ कहते हैं।

The noble [the Arya] consider a person of good conduct to be superior if he does not fan the extinguished embers of enmity, does neither act arrogant nor mean, and does not act foul and behave undesirably under the pretext that he is in grave danger.

न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं
नान्यस्य दुःखे भवति प्रहृष्टः।
दत्त्वा न पश्चात्कुरुतेऽनुतापं
स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः॥

जो अपने सुखमें प्रसन्न नहीं होता, दूसरेके दुःखके समय हर्ष नहीं मानता और दान देकर पश्चात्ताप नहीं करता; वह सज्जनोंमें सदाचारी कहलाता है।

Amongst persons of noble conduct he is considered superior to others who is not all the time celebrating his good fortune, who does not rejoice over the others' misfortune, and who never feels sorry over what he has given away in charity.

देशाचारान् समयाञ्जातिधर्मान्
बुभूषते यः स परावरज्ञः।
स यत्र तत्राभिगतः सदैव
महाजनस्याधिपत्यं करोति॥

जो मनुष्य देशके व्यवहार, लोकाचार तथा जातियोंके धर्मोंको जाननेकी इच्छा करता है, उसे उत्तम-अधमका विवेक हो जाता है। वह जहाँ कहीं भी जाता है; सदा महान् जनसमूहपर अपनी प्रभुता स्थापित कर लेता है।

A person who makes an effort to learn about the habits, social conduct and *Dharma* of his countrymen, soon learns to distinguish between the desirable and the undesirable. Such a person, wherever he goes, is able to establish his hold over the masses.

दम्भं मोहं मत्सरं पापकृत्यं
राजद्विष्टं पैशुनं पूगवैरम्।
मत्तोन्मत्तैर्दुर्जनैश्चापि वादं
यः प्रज्ञावान् वर्जयेत् स प्रधानः॥

जो बुद्धिमान् दम्भ, मोह, मात्सर्य, पापकर्म, राजद्रोह, चुगलखोरी, समूहसे वैर और मतवाले, पागल तथा दुर्जनोंसे विवाद छोड़ देता है, वह श्रेष्ठ है।

That wise man alone is superior to others who gives up arrogance, attachment, evil deeds, envy, treachery, back-biting, enmity with the other social groups and contentious arguments with the persons who have lost their mind or with persons of evil intent. [विदुरनीति १। ११६—१२०]

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०८१, शक १९४६, सन् २०२४, सूर्य-उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, वैशाख कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा अहोरात्र	बुध	स्वाती रात्रिमें ११।५३ बजेतक	२४ अप्रैल	**वैशाख स्नान, व्रत-नियम प्रारम्भ।**
प्रतिपदा प्रातः ५।३६ बजेतक	गुरु	विशाखा ,, १।४२ बजेतक	२५ ,,	**वृश्चिकराशि** रात्रिमें ७।१४ बजेसे।
द्वितीया ,, ६।२० बजेतक	शुक्र	अनुराधा ,, २।१७ बजेतक	२६ ,,	**भद्रा** सायं ६। २७ बजेसे, **मूल** रात्रिमें २। १७ बजेसे।
तृतीया ,, ६।३२ बजेतक	शनि	ज्येष्ठा ,, २।४३ बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** प्रातः ६। ३२ बजेतक, **धनुराशि** रात्रिमें २। ४३ बजेसे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ९। ३० बजे, भरणीका सूर्य** दिनमें ३। ३१ बजे।
चतुर्थी ,, ६।१४ बजेतक	रवि	मूल ,, २।४१ बजेतक	२८ ,,	**मूल** रात्रिमें २। ४१ बजेतक।
षष्ठी रात्रिशेष ४।११ बजेतक	सोम	पू०षा० ,, २।१२ बजेतक	२९ ,,	**भद्रा** रात्रिशेष ४। ११ बजेसे।
सप्तमी रात्रिमें २।३३ बजेतक	मंगल	उ० षा० ,, १।२३ बजेतक	३० ,,	**भद्रा** दिनमें ३। २१ बजेतक।
अष्टमी ,, १२। ३७ बजेतक	बुध	श्रवण ,, १२।१३ बजेतक	१ मई	**मई दिवस।**
नवमी ,, १०। २५ बजेतक	गुरु	धनिष्ठा ,, १०।४७ बजेतक	२ ,,	**कुम्भराशि** दिनमें ११। ३० बजेसे, **पंचकारम्भ** दिनमें ११। ३० बजे।
दशमी ,, ८। ५ बजेतक	शुक्र	शतभिशा ,, ९।१३ बजेतक	३ ,,	**भद्रा** दिनमें ९। १४ बजेसे रात्रिमें ८। ५ बजेतक।
एकादशी सायं ५।३८ बजेतक	शनि	पू० भा० ,, ७।३३ बजेतक	४ ,,	**मीनराशि** दिनमें १। ५८ बजेसे, **वरूथिनी एकादशीव्रत (सबका), श्रीवल्लभाचार्य-जयन्ती।**
द्वादशी दिनमें ३। १० बजेतक	रवि	उ० भा० सायं ५।५३ बजेतक	५ ,,	**प्रदोषव्रत, मूल** सायं ५। ५३ बजेसे।
त्रयोदशी ,, १२।४८ बजेतक	सोम	रेवती दिनमें ४। १८ बजेतक	६ ,,	**भद्रा** दिनमें १२। ४८ बजेसे रात्रिमें ११। ४२ बजेतक, **मेषराशि** दिनमें ४। १८ बजेसे, **पंचक समाप्त** रात्रिमें ४। १८ बजे।
चतुर्दशी ,, १०। ३४ बजेतक	मंगल	अश्वनी ,, २।५३ बजेतक	७ ,,	**श्राद्धकी अमावस्या, मूल** दिनमें २। ५३ बजेतक।
अमावस्या ,, ८।३४ बजेतक	बुध	भरणी ,, १।४३ बजेतक	८ ,,	**अमावस्या, वृषराशि** रात्रिमें ७। ३१ बजेसे।

सं० २०८१ शक १९४६, सन् २०२४, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ग्रीष्म-ऋतु, वैशाख शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा प्रातः ६। ५२ बजेतक	गुरु	कृत्तिका दिनमें १२।५३ बजेतक	९ मई	× × × ×
द्वितीया ,, ५। ३१ बजेतक	शुक्र	रोहिणी ,, १२। २३ बजेतक	१० ,,	**मिथुनराशि** रात्रिमें १२। २३ बजेसे, **अक्षयतृतीया, श्रीपरशुरामजयन्ती।**
चतुर्थी रात्रिशेष ४।१२ बजेतक	शनि	मृगशिरा ,, १२। २१ बजेतक	११ ,,	**भद्रा** सायं ४। २५ बजेसे रात्रिशेष ४। १२ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, कृत्तिकाका सूर्य** दिनमें १०। ३१ बजे।
पंचमी ,, ४। १६ बजेतक	रवि	आर्द्रा ,, १२। ४६ बजेतक	१२ ,,	**आद्यजगद्गुरु श्रीशंकराचार्य-जयन्ती।**
षष्ठी ,, ४। ५४ बजेतक	सोम	पुनर्वसु ,, १। ४३ बजेतक	१३ ,,	**कर्कराशि** प्रातः ७। २९ बजेसे, **श्रीरामानुजाचार्य-जयन्ती।**
सप्तमी अहोरात्र	मंगल	पुष्य ,, ३। १० बजेतक	१४ ,,	**श्रीगंगासप्तमी, वृष-संक्रान्ति** रात्रिमें ९। ३९ बजे, **ग्रीष्मऋतु प्रारम्भ, मूल** दिनमें ३। १० बजेसे।
सप्तमी प्रातः ५।५५ बजेतक	बुध	आश्लेषा सायं ५।४ बजेतक	१५ ,,	**भद्रा** प्रातः ५। ५५ बजेसे सायं ६। ४१ बजेतक, **सिंहराशि** सायं ५। ४ बजेसे।
अष्टमी दिनमें ७। २६ बजेतक	गुरु	मघा रात्रिमें ७। १९ बजेतक	१६ ,,	**सीतानवमी, मूल** रात्रिमें ७। १९ बजेतक।
नवमी ,, ९। १५ बजेतक	शुक्र	पू०फा० ,, ९। ५१ बजेतक	१७ ,,	**कन्याराशि** रात्रिशेष ४। ३० बजेसे।
दशमी ,, ११। १६ बजेतक	शनि	उ०फा० ,, १२। २९ बजेतक	१८ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १२। १७ बजेसे।
एकादशी ,, १। १९ बजेतक	रवि	हस्त ,, ३। ३ बजेतक	१९ ,,	**भद्रा** दिनमें १। १९ बजेतक, **मोहिनी एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी ,, ३। ११ बजेतक	सोम	चित्रा अहोरात्र	२० ,,	**तुलाराशि** सायं ४। १२ बजेसे, **सोमप्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,, ४। ४७ बजेतक	मंगल	चित्रा प्रातः ५। २२ बजेतक	२१ ,,	**श्रीनृसिंहचतुर्दशी।**
चतुर्दशी सायं ५।५८ बजेतक	बुध	स्वाती दिनमें ७। २२ बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** सायं ५।५८ बजेसे, **वृश्चिकराशि** रात्रिमें २। ३२ बजेसे, **व्रत-पूर्णिमा।**
पूर्णिमा ,, ६। ४२ बजेतक	गुरु	विशाखा ,, ८। ५५ बजेतक	२३ ,,	**भद्रा** प्रातः ६। १९ बजेतक, **बुद्धजयन्ती, बुद्धपूर्णिमा, वैशाखस्नान समाप्त।**

कृपानुभूति

रामनामकी महिमा

हमारे गाँवके सेठ ताराचन्द घनश्यामदासकी बर्माशेल कम्पनीकी एजेन्सियाँ साठ वर्ष पूर्व भारतवर्षके बहुतसे प्रदेशोंमें थीं। इस फर्मकी एक एजेन्सी किरासन तेलकी रघुनाथपुर (मानभूम) वर्तमानमें पुरुलिया जिलेमें है, वहाँ मैं एजेन्सीका इन्चार्ज था। उस समय मेरी उम्र २२ वर्ष थी। यह घटना १९५५ की है। रघुनाथपुरमें ब्राह्मण और वैश्योंकी संख्या अधिक है। भूमिगत जलमें तेल मिश्रित होनेसे वहाँ कुएँके पानीसे न तो कपड़े साबुनसे साफ होते थे, न साबुनसे शरीर ही। अत: वहाँ नदियों और बड़े-बड़े तालाबोंमें लोग स्नान करने तथा कपड़े धोने जाते थे। एक बड़ा भारी तालाब था, जिसकी लम्बाई ६००-७०० मीटर तथा चौड़ाई करीब ४०० मीटर होगी। इस तालाबका नाम सालका था। मैं भी वहाँ नहाने जाया करता था। मेरी उम्रके साथी भी वहाँ जाया करते थे। मैंने तैरना अपने साथियोंके साथ वहीं सीखा था।

खुला किरासन तेल खतम होनेसे कतारासगढ़ हेड ऑफिससे आदेश आया कि हुण्डी देकर २५ ड्रम पुरुलिया डिपोसे ले आओ। दूसरे दिन मैं सुबह जल्दी उठा और स्नान करने साइकिल लेकर सालका पहुँच गया। वहाँ मेरा एक साथी पहलेसे कपड़ा धो रहा था। उससे मैंने कहा कि 'गोपाल! तुमको सालका पार करके दिखाऊँ?' उसने मुझे मना किया कि रहने दे····। इस बातपर मेरी जिद हो गयी। मैंने उससे कहा कि आज तो मैं तुम्हें सालका पार करके ही दिखाऊँगा। यह कहकर मैं उस तालाबमें कूद गया। उसके मना करनेपर भी मैं नहीं माना। उस तालाबमें कभी उलटा कभी सीधा तैरता हुआ मैं आरामसे तालाबके बीचोबीच पहुँच गया। फिर दोनों तरफ नजर दौड़ायी तो अथाह पानी दिखायी दिया। उसी समय यह विचार आया कि अब तू डूबे तो तुझे कौन बचायेगा! दूसरी तरफ यह विचार आया कि अब तुझे राम ही बचा सकते हैं। ये विचार आते ही मनमें भय पैदा हो गया। जहाँ आधे तालाबको आरामसे तैरकर पार कर लिया था, वहीं अब भय पैदा होनेसे खूब जल्दी-जल्दी तैरने लगा। मनमें रामनामका जप भी शुरू कर दिया। जल्दी-जल्दी हाथ-पैर मारनेसे साँस फूल गयी। तैरनेकी हिम्मत टूट गयी, किंतु रामनाम जप नहीं भूला। प्राण कण्ठगत हो गये और सोच लिया कि अब तो डूबना ही पड़ेगा। थककर चूर-चूर हो गया, किंतु किनारा बहुत दूर था। अब चारों तरफ नजर दौड़ाने लगा, तब करीब दस हाथकी दूरीपर पानीके बाहर घास उगी हुई दिखायी पड़ी—डूबतेको तिनकेका सहारा। थक तो बहुत गया ही था, किंतु रामनामका जप करते हुए घासको पकड़कर साँस लेनेकी इच्छासे जैसे-तैसे घासतक पहुँचा। परंतु जैसे ही घासको पकड़ा, पानीमें डूबने लगा, गनीमत थी कि वहाँ ज्यादा गहराई नहीं थी और पानी गलेतक ही रहा। नाक और मुँहतक पानी नहीं पहुँचा।

यदि नाकके ऊपर पानी पहुँच जाता तो बचनेका कोई उपाय नहीं था। यह रामजीकी कृपा ही थी। मैं वहीं खड़े-खड़े राम-नामका जप करता रहा। फिर गलेतक पानीमें खड़ा रहकर १०-१५ मिनट साँस लेकर तालाबके दूसरे किनारेपर आरामसे तैरकर पहुँच गया। किनारे जाकर पानीसे बाहर निकलने लगा तो देखा कि कमरमें अँगोछा बाँध रखा था, वह तो तालाबमें ही रह गया। उधर दूसरे किनारेपर मेरा साथी गोपाल बैठा हुआ था। उसे इशारेसे बुलाकर कपड़े मँगाये तथा गोपालको अपनी आप-बीती भी बता दी। यह रामनामकी ही कृपा थी कि सद्बुद्धि आयी कि जैसे-तैसे उस घासतक तो पहुँचा। जैसे भगवान्‌ने गजको ग्राहसे मुक्त किया, वैसे ही भगवान्‌के नाम—रामनामके जपने मुझे मृत्युके मुखसे निकाला। यह मेरे जीवनकी सच्ची घटना है। [**श्रीकन्हैयालालजी चतुर्वेदी**]

पढ़ो, समझो और करो

(१)

बुरे समयमें मदद

मेरे पिताजीका ९६ वर्षकी आयुमें १६ दिसम्बर सन् २००९ ई० को निधन हो गया था। धार्मिक कृत्यों एवं सामाजिक परम्पराओंको पूरा करके मैं १६ जनवरी सन् २०१० ई० की दोपहरको अपनी एवं छोटे भाईकी पत्नीको लेकर अपने पैतृक गाँव पाँचेटिया (जिला पाली, राजस्थान)-से कारद्वारा ५० कि०मी० दूरस्थित अपने शहरके निवास-स्थान पाली आ रहा था। पालीसे करीब २५ कि०मी० पहले मुझे कारके निचले हिस्सेसे कुछ अनजानी-सी आवाज सुनायी देने लगी। मुझे लगा कि गाड़ीमें कुछ गड़बड़ हो गयी है, किंतु एकाएक विश्वास भी नहीं हो रहा था। अत: कुछ मिनटोंतक गाड़ी चलाता रहा, अन्तत: नीचे उतरकर देखा तो गाड़ीके अगले पहियेमें पंचर हो चुका था। मुझे क्षणिक चिन्ता हो गयी, कार रखनेके पिछले १० वर्षोंमें बीच रास्तेमें सुनसान जगहपर पंचर होनेकी यह पहली घटना थी। ६२ वर्षकी उम्र एवं भारी शरीर होनेसे मुझे यह भी पता था कि स्वयं टायर बदलना मेरे लिये सम्भव नहीं है। साथमें दो स्त्रियाँ भी थीं, जिससे और भी परेशानी महसूस हो रही थी। अब क्या होगा ? कौन मददमें आयेगा ? कब पाली पहुँचेंगे—यही विचार मेरे मनमें बार-बार आ-जा रहे थे कि उन्हीं क्षणोंमें पालीकी ओरसे आता हुआ पानीका टैंकर लिये एक ट्रैक्टर पाससे गुजरा, जिसे २०-२५ वर्षका एक युवक चला रहा था; मैंने उस युवकको रुकनेके लिये इशारा किया। उसने मेरी परिस्थिति समझकर तुरंत टैंकर रोक दिया एवं मेरी मददके लिये आ गया। उसने मुझसे टायर बदलनेका सामान लेकर स्वयं टायर बदल दिया। मेरी अवस्था देखते हुए उस सज्जन युवकने इस कार्यमें मुझसे कोई मदद भी नहीं माँगी। सब घटनाक्रम १५ से २० मिनटमें पूरा हो गया एवं गाड़ी फिरसे चलनेकी अवस्थामें आ गयी। इस घटनाने मुझे भाव-विभोर कर दिया। मैंने मन-ही-मन उस व्यक्तिका बहुत आभार माना। मेरे पूछनेपर उसने अपनेको पासके गाँवका रहनेवाला बताया। कृतज्ञताके भावसे मैं उस युवकको इनामके रूपमें कुछ रुपये देने लगा, किंतु उसने अस्वीकार करते हुए कहा कि मैंने यह कार्य आपकी नि:स्वार्थ भावसे मदद करनेके उद्देश्यसे किया है एवं पहले भी इस प्रकार बुरे समयमें लोगोंकी मदद करता रहा हूँ, इसपर मैंने उसे समझाया कि मैं यह पैसा आपको मजदूरीकी भावनासे नहीं दे रहा हूँ बल्कि तुम्हारी नेक भावनाको पुरस्कृत कर रहा हूँ, पर फिर भी उसने उसे स्वीकार नहीं किया।

तब मैंने कहा—आजके सभ्य कहे जानेवाले युगमें जब लोग अपना एक क्षण भी दूसरेकी मददमें नहीं देना चाहते हैं, तब आपने अपना कार्य रोककर मेरी इस कठिन परिस्थितिमें नि:स्वार्थभावसे मदद की है। अत: मैं आपको यह राशि कृतज्ञतास्वरूप देना चाहता हूँ, इसपर उस व्यक्तिने कहा कि आप मुझे पाँच रुपये दे दीजिये। तब मुझे यह भी मालूम हुआ कि यह व्यक्ति लालचकी आदतसे कोसों दूर है। मैंने एक बार पुन: आग्रह किया तो मेरी तीव्र भावनाको समझकर विवश होकर उसने मेरी सम्पूर्ण भेंट स्वीकार की। अन्तमें मैंने अपना परिचय दिया ताकि भविष्यमें आपसमें फिर मिल सकें और तदुपरान्त हम अपने-अपने स्थानोंके लिये रवाना हो गये।

रास्तेमें विचार आया कि ईश्वरने समाजमें बुरे व्यक्तियोंके साथ-साथ प्रचुर संख्यामें अच्छे इन्सान भी पैदा किये हैं, जो बुरे वक्तमें दूसरोंकी मदद करनेकी भावना रखते हैं। आनुवंशिकी विषयके वैज्ञानिक होनेके नाते मुझे लगा कि प्रचलित वैज्ञानिक दृष्टिकोण एक बार फिर कसौटीपर खरा उतरा कि मानव-स्वभावमें प्राकृतिक विविधता होती है तथा बुराई या भलाई करनेकी आदत भी कुछ अंशतक आनुवंशिक गुणके रूपमें विद्यमान रहती है, जो उचित वातावरण पाकर भला या बुरा कार्यकर अभिव्यक्त होती है।

इस छोटी-सी घटनाने मुझे एक बार पुन: मानव-स्वभावको समझनेका अवसर दिया। मैंने इस मददके लिये भगवान्‌को भी धन्यवाद दिया एवं तय किया कि प्रबुद्ध पाठकोंकी जानकारी हेतु यह घटना मैं कल्याणमें प्रकाशन हेतु प्रेषित करूँगा। **[डॉ० श्रीमहादेवजी आढ़ा]**

(२)

प्रार्थना—संकटकी संजीवनी

कहते हैं कि भगवान्‌का पावन नाम कलियुगमें संकटके अवसरपर संजीवनी है। जब मनुष्यके सारे उपाय

व्यर्थ हो जाते हैं, जब उसकी सारी सामर्थ्य समाप्त हो जाती है, सारा धनबल और जनबल एक ओर रखा रह जाता है, तब प्रभुनामकी संजीवनी अमोघ उपचार बनकर सामने आती है, बशर्ते हमारी श्रद्धा और आस्था सच्ची हो। इसीका एक सुन्दर उदाहरण मध्य प्रदेशके हमारे ग्राम चक्की खमरियामें प्रत्यक्ष रूपसे देखनेको मिला। सिवनी जिलेमें स्थित ग्राम चक्की खमरिया, कुरई विकासखण्डका सबसे बड़ा आदिवासी-बहुल गाँव है। कृषि यहाँका प्रमुख व्यवसाय है। चूँकि सदियोंसे यहाँ पत्थरकी चक्कियाँ और खलबट्टे आदि बनाये जाते थे, अत: इस गाँवका नाम चक्की खमरिया पड़ा। आजसे लगभग तीन दशक पहले यह गाँव निर्धनता और अशिक्षासे जूझ रहा था, किंतु आज शिक्षा और सम्पन्नतासे यह गाँव भरा-पूरा है। श्री एन० सिंहजी चन्देल इसी गाँवके निवासी हैं। ये भगवान्‌के परम भक्त हैं और सरल-सहज स्वभावके धनी हैं।

लगभग पाँच-छ: वर्ष पहलेकी बात है, इनका युवा पुत्र पवन अचानक गम्भीर रूपसे बीमार हो गया। पवनको नागपुर ले जाया गया। नागपुरमें चिकित्सा-सुविधा बहुत अच्छी है, किंतु उसके बावजूद चिकित्सकोंके अनेक प्रयासोंके बाद भी पवनको अपेक्षित स्वास्थ्य-लाभ नहीं मिला और उसकी स्थिति उत्तरोत्तर गम्भीर होती चली गयी। एन० सिंह साधारण कृषक हैं। उनके पास न अधिक पैसा था, न बहुत संसाधन ही थे। अपने पुत्रकी इस गम्भीर स्थितिमें वे तो दुखित थे ही, सारा गाँव भी उनके दु:खसे दुखी हो रहा था। उधर नागपुरके डॉक्टर भी उन्हें जवाब दे चुके थे कि धैर्यसे भगवान्‌की प्रार्थना करते हुए इसका उपचार लम्बे समयतक कराना होगा, तब हो सकता है कि स्वास्थ्य-लाभ हो जाय। एन० सिंहजी अबतक अपनी सारी सामर्थ्य झोंक चुके थे। उनकी उपचार करानेकी क्षमता भी लगभग समाप्त हो चुकी थी। अब वे किंकर्तव्यविमूढ़ थे। इस स्थितिमें काफी दिन बीत गये। ग्राम चक्की खमरियामें काफी लोग कल्याणका पठन-पाठन करते हैं। उन्हें कल्याणमें छपनेवाले प्रभुकृपाके संस्मरणोंसे बड़ी प्रेरणा मिलती है। इसीसे प्रेरित होकर दुखी पिताको गाँवके कुछ लोगोंने सलाह दी कि क्यों न आप पुत्रके स्वास्थ्य-लाभके लिये भगवान्‌की शरण ग्रहण करें? हारेको हरिनाम! एन० सिंह कातर होकर भगवान्‌के मन्दिरमें जाने लगे। ग्राममें शक्तिस्वरूपा माँ दुर्गाका नवनिर्मित मन्दिर है, साथ ही राममन्दिर, कृष्णमन्दिर, एक प्राचीन शिवमन्दिर तथा सिद्धेश्वर हनुमान्‌जीका मन्दिर भी है। वे इन मन्दिरोंमें आँखोंमें आँसू भरकर प्रार्थना करने लगे। तभी उनके मनमें आया कि क्यों न भगवान्‌के सामने कोई संकल्प ग्रहण किया जाय, ताकि उनका संकल्प उनके समर्पणका साक्षी बन सके। उन्होंने कातर होकर संकल्प लिया कि 'हे प्रभु! मेरे पुत्रको स्वास्थ्य-लाभ हो जायगा तो मैं सारे गाँवमें प्रतिदिन प्रात:काल कीर्तन करते हुए लोगोंको जगाऊँगा।

इस घटनाके बाद धीरे-धीरे समय बीतता गया। कुछ दिनोंके बाद पवनको अस्वस्थताकी स्थितिमें नागपुरसे ग्राम चक्की खमरिया लेकर वापस आना पड़ा। जब उसे घर लाया गया, तब उसके पूरे शरीरमें तीन-चार नलियाँ लगी हुई थीं। जीवन बचनेकी आशा बहुत कम थी। परिवारके सभी लोग स्वास्थ्य-लाभकी आशा छोड़ चुके थे। ऐसी हताशाके माहौलमें एन० सिंहजीने भारी मनसे अपना संकल्प पूरा करते हुए भगवान्‌के कीर्तनका शुभारम्भ किया। वे प्रात: पाँच बजे उठते और स्नान करके भगवान्‌का भजन करते हुए गाँवमें निकल जाते। कोई मिलता तो ठीक, न मिलता तो अकेले ही निकल पड़ते। प्रभुकी कृपासे कीर्तनके शुभारम्भके पश्चात् उत्तरोत्तर बालककी स्थितिमें सुधार होने लगा और प्रभुकी महती अनुकम्पा कि एक दिन वह भी आया, जब पवन बिस्तरसे उठकर चलने-फिरनेमें समर्थ हो गया। कुछ समय बाद लोगोंने देखा कि पवन पूरी तरह स्वस्थ है और उसकी तन्दुरुस्तीमें लगातार सुधार हो रहा है। तबसे एन० सिंहजी भगवान्‌के नामका जप करते हुए अपनी कीर्तन-मण्डलीको लेकर ग्राममें प्रतिदिन भ्रमण करते हैं तथा गाँवके लोगोंकी नींद प्रात: भगवान्‌के पावन नामको सुनते हुए ही खुलती है। यह कीर्तन- मण्डली एक मन्दिरसे दूसरे मन्दिरतक जाती है और ढोलक, मँजीरा, करतालपर रामनामी चादर ओढ़कर भजनोंका गायन करते हुए निकलती है। इन भक्तोंको देखकर ऐसा लगता है, जैसे सुबह-सुबह भक्तरूपमें भगवान्‌के ही दर्शन हो

रहे हों। चाहे कड़ाकेकी ठण्ड हो या भीषण वर्षा हो, उनका यह क्रम कभी नहीं टूटता। उनके साथ ग्रामके कुछ और भक्त भी नियमित रूपसे रहते हैं और अब तो मातृशक्ति भी कीर्तन-मण्डलीसे जुड़ती जा रही है। स्वयं पवनको भी अब इस कीर्तनमें शामिल देखकर बहुत खुशी होती है। इस कीर्तनके फलस्वरूप पूरे ग्राममें प्रेम, सहयोग और एकताका सकारात्मक वातावरण भी बना है। गाँव धन-धान्यसे परिपूर्ण हो रहा है और इस गाँवसे प्रेरणा लेकर निकटस्थ ग्रामोंमें भी कीर्तन-मण्डली आरम्भ करनेका विचार हो रहा है। **[श्रीअखिलेशजी तिवारी]**

(३)

समाजसे लीजिये ही नहीं, दीजिये भी

हमारा जीवन सच्चे अर्थोंमें तभी सार्थक बन सकता है, जब हम जो कुछ भी समाजसे लें, उसे अपने भरसक प्रयत्नद्वारा पुनः समाजको वापस लौटानेका संकल्प करें। हमारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व-निर्माणमें हमारे जीवनमें आयी अनेक विभूतियोंका प्रत्यक्ष योगदान होता है। आप अपने जीवन-निर्माणमें अपने प्राइमरी अध्यापकोंका योगदान, माता-पिताके संघर्षका स्मरण करें तो आपको अवश्य भान होगा कि आज आप जो कुछ भी हैं, उसमें इन गुरु तत्त्वोंका योगदान कितना अहम है!

मेरे जीवनमें भी एक ऐसा व्यक्तित्व है, जिसके द्वारा दिये गये अद्वितीय मार्गदर्शनकी चर्चा आपसे करना चाहता हूँ। जब भी मैं उनका स्मरण करता हूँ तो मेरा सिर अनायास बड़ी श्रद्धासे उनके लिये झुक जाता है।

कक्षा ९ तक गणित विषयको लेकर मेरे अन्दर एक अजीब-सा भय सदैव बना रहता था। अन्य विषयोंमें मेरी प्रगति सामान्य थी, किंतु गणित विषयमें मैं कभी उत्तीर्ण नहीं हो पाता था। अगले वर्ष हाईस्कूलकी परीक्षा थी और मेरे परिजनोंका बराबर मुझपर एक दबाव-सा रहता था कि किस प्रकार मैं इस विषयमें अपना प्रदर्शन सुधार सकूँ?

मुझे अपने मोहल्लेके अन्य बच्चोंके साथ शामको खेलनेमें बड़ा आनन्द आता था। इसी दौरान मेरे पड़ोसमें रहने आये एक विद्यार्थी किरायेदारसे मेरी भेंट हुई। इन भाई साहबने मेरा खेल रोककर मुझसे मेरी पढ़ाईको लेकर कुछ प्रश्न किये। जब उन्होंने मुझसे गणित विषयकी प्रगतिके बारेमें चर्चा की, तो मैंने उन्हें इस विषयको लेकर अपनी व्यथा बतायी। भाईसाहबने मुझसे कहा कि मैं जब चाहूँ, गणित विषयमें उनसे मार्गदर्शन ले सकता हूँ।

भाईसाहब एक बड़ी साधारण ग्रामीण पृष्ठभूमिसे सम्बन्धित थे और बड़े ही संघर्षशील थे। उनके पास एक पुरानी साइकिल थी, जिससे वे सिविल इंजीनियरिंगमें डिप्लोमा कोर्स करने पॉलीटेक्निक संस्थान जाया करते थे। अपनी किरायेकी कोठरीमें पुआलसे भरे बिछौनेमें वे लेटते थे। एक पुरानेसे मिट्टीके स्टोवमें दाल उबालते समय उसीमें आटेकी लोई डाल देते थे और उसके पक जानेपर वही उनका भोजन बन जाता था। इस प्रकार उनकी दाल पकनेके दौरान ही उनके मार्गदर्शनमें मेरी गणित विषयकी कक्षा भी साथमें लगने लगी।

भाईसाहबने गणित विषयकी बड़ी ही दिलचस्प दुनियासे मेरा परिचय कराया। अबतक जो विषय मेरे लिये बेहद डरावना बना हुआ था, उसीसे मेरी पक्की दोस्ती करवा दी।

उनके मार्गदर्शनके बाद मेरा रुका हुआ गणित विषयका इंजन तो जैसे स्टार्ट हो गया और अभीतक स्टार्ट मोडमें ही है। गणित विषय अब मेरा सबसे प्रिय विषय बन गया था और मैंने स्नातक-स्तरकी परीक्षामें भी इसी विषयको चुना। भाईसाहबने अपनी मेहनत और संघर्षके दमपर पॉलीटेक्निक परीक्षामें स्वर्णपदक अर्जित किया और वे बादमें राज्यस्तरीय सेवामें इंजीनियर नियुक्त हुए।

इस घटनाके बाद गणित विषयको लेकर मेरा दृष्टिकोण एकदम बदल-सा गया। मैं अपने आस-पास जिस किसीको भी इस विषयमें कमजोर पाता हूँ, उसकी भरसक मदद और मार्गदर्शन देनेका प्रयास करता हूँ। मुझे ऐसा प्रतीत होता है, जैसे भाईसाहबद्वारा मुझे प्रदान की गयी टॉर्चको मैं आगे बढ़ानेका कार्य कर रहा हूँ।

मैं अपने जीवनमें अचानक आ गये इस देवदूतके प्रति बेहद श्रद्धाका भाव रखता हूँ, जिसने गणित-जैसे कठिन विषयसे मेरा परिचय कराकर उसे हमेशाके लिये मेरा मिशन बना दिया है। अपने शेष रह गये जीवनमें मैं उनकी प्रेरणासे गणित विषयके प्रचार-प्रसारके प्रति सदैव संकल्पित रहूँगा।

[डॉ० श्रीविजयकुमारजी शर्मा]

मनन करने योग्य

भगवन्नामका जप करनेवाला सदा निर्भय है

दैत्यराज हिरण्यकशिपु हैरान था। जिस विष्णुको मारनेके लिये उसने सहस्रों वर्षतक तपस्या करके वरदान प्राप्त किया, जिस विष्णुने उसके सगे भाईको वाराहरूप धारण करके मार डाला, उसी विष्णुका स्मरण, उसीके नामका जप, उसीकी उपासना चल रही है। हिरण्यकशिपुके जीते-जी उसके राज्यमें ही नहीं, उसके राजसदनमें और वह भी उसके सगे पुत्रके द्वारा। नन्हा-सा बालक होनेपर भी प्रह्लाद अद्भुत हठी है। वह अपना हठ किसी प्रकार छोड़ नहीं रहा है। सबसे अधिक चिन्ताकी बात यह है कि जिस हिरण्यकशिपुकी भौंहोंपर बल पड़ते ही समस्त लोक और लोकपाल थर-थर काँपने लगते हैं, उसके क्रोधकी प्रह्लाद राई-रत्ती भी चिन्ता नहीं करता।

प्रह्लाद जैसे डरना जानता ही नहीं और अब तो हिरण्यकशिपु स्वयं अपने उस नन्हे पुत्रसे चित्तमें भय खाने लगा है। वह सोचता है—'यह बालक क्या अमर है? क्या इसे समस्त पदार्थोंपर विजय प्राप्त है? कहीं इसके विरोधसे मेरी मृत्यु तो नहीं होगी?'

हिरण्यकशिपुकी चिन्ता अकारण नहीं थी। उसने दैत्योंको आज्ञा दी थी प्रह्लादको मार डालनेके लिये; किंतु दैत्य भी क्या कर सकते थे, उनके शस्त्र प्रह्लादका शरीर छूते ही ऐसे टूट जाते थे, जैसे हिम या चीनीके बने हों। उन्होंने पर्वतपरसे फेंका प्रह्लादको तो वह बालक ऐसे उठ खड़ा हुआ, जैसे पुष्पराशिपर गिरा हो। समुद्रमें डुबानेका प्रयत्न भी असफल रहा। सर्प, सिंह, मतवाले हाथी—पता नहीं क्यों, सभी क्रूर जीव उसके पास जाकर ऐसे बन जाते हैं, मानों युगोंसे उसने उन्हें पाला हो। उसे उपवास कराया गया लम्बे समयतक, हालाहल विष दिया गया, सब तो हो गया। प्रह्लादपर क्या किसी मारक क्रियाका प्रभाव पड़ेगा ही नहीं? कोई मारक पदार्थ क्यों उसे हानि नहीं पहुँचाता?

एक आश्वासन मिला दैत्यराजको। उसकी बहिन होलिकाको एक वस्त्र मिला था किसीसे, जिसे ओढ़कर वह अग्निमें बैठनेपर भी जलती न थी। वह इस बार प्रह्लादको पकड़कर अग्निमें बैठेगी। सूखी लकड़ियोंका पूरा पर्वत खड़ा कर दिया दैत्योंने, उसमें अग्नि लगा दी।

होलिका अपना वरदानी वस्त्र ओढ़कर प्रह्लादको गोदमें लेकर उस लकड़ियोंके पर्वतपर पहले ही जा बैठी थी।

हिरण्यकशिपु स्वयं देखने आया था कि इस बार क्या होता है। अग्निकी लपटोंमें कुछ देर तो कुछ दिखायी नहीं पड़ा और जब कुछ दिखायी पड़ा, तब दैत्योंके साथ वह दैत्यराज भी नेत्र फाड़कर देखता रह गया। होलिकाका कहीं पता नहीं था। वह भस्म बन चुकी थी और प्रह्लाद अग्निकी लपटोंमें बैठा मन्द-मन्द मुसकरा रहा था। हिरण्यकशिपुने पूछा—'तुझे डर नहीं लगता?' प्रह्लाद बोले—

रामनाम जपतां कुतो भयं सर्वतापशमनैकभेषजम्।
पश्य तात मम गात्रसन्निधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना॥

समस्त सन्तापोंको नष्ट करनेवाली एकमात्र औषधरूप रामनामका जप करनेवालेको भय कहाँ? पिताजी! देखिये न, इस समय मेरे शरीरसे लगनेवाली अग्निकी लपटें भी मेरे लिये जलके समान शीतल हो गयी हैं।

हिरण्यकशिपु भला, क्या कहता। वह चुपचाप हट गया वहाँसे। [**विष्णुपुराण**]

कल्याणका आगामी ९९वें वर्ष (सन् २०२५ ई०)-का विशेषाङ्क

पर्यावरण-अङ्क

'पर्यावरण' शब्द दो पदोंके योगसे बना है—परि और आवरण। संस्कृत व्याकरणके नियमके अनुसार 'परि' उपसर्गके इकारका यकार आदेश होनेसे पर्यावरण शब्द बनता है। परिका अर्थ है चारों ओर और आवरणका अर्थ है आच्छादन। इस प्रकार पर्यावरणका सामान्य अर्थ है—चारों ओरसे व्याप्त रहनेवाले भौतिक तत्त्व। प्रकृति, परिवेश, वातावरण तथा जलवायु आदि शब्द भी पर्यावरणके समानार्थक शब्द हैं। मूलत: यह समस्त स्थूल प्रकृति पर्यावरणकी बोधिका है। प्राणिजगत् पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश—इस पंचविध प्रकृतिसे सदा ही आवृत रहता है, व्याप्त रहता है और इससे प्रभावित होकर जीवन जीता है। मनुष्य आदि सभी प्राणी-पदार्थ पर्यावरण किंवा प्रकृतिके सापेक्ष हैं, निरपेक्ष नहीं। प्रकृतिका सम्यक् अवदान जीवके लिये वरदान है। बिना पर्यावरणके सहयोगके जीवन दुर्लभ ही नहीं असम्भव है।

अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा हमें उष्णता, प्रकाश, शीतलता एवं चैतन्य प्रदान करते हैं। ग्रह, नक्षत्र, तारे हमारे जीवनको गतिशील बनाते हैं। प्राणवायु हमें जीवनीशक्ति प्रदान करती है। यह धरा टिकनेके लिये हमारी आधारशिला बनी हुई है, हमारा आश्रय एवं अवलम्ब बनी हुई है। यह हमें अन्न, वनस्पति एवं औषधि प्रदान करती है। वन-उपवन एवं उद्यान हमें शान्ति एवं सौन्दर्यकी अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। हिमाच्छादित उत्तुंग पर्वत उत्तम जलके स्रोत हैं। नदियाँ हमारी प्यास बुझाती हैं, धरतीको सदा सींचती रहती हैं और हमारी जीवनधारा हैं। जलके बिना तो जीवन ही असम्भव है। आकाश हमें अवकाश प्रदान करता है। जल और वायु—ये दो तत्त्व मानव-जीवन ही नहीं, जीवनिकायके प्राण हैं। पृथ्वी आदि इन पाँचों घटकोंका समवेत स्वरूप ही पर्यावरण है।

जल और वायुका अजस्र प्रवाह एवं उसकी स्वच्छता एवं पवित्रता हमारे संतुलित जीवनकी आधारशिला है। इस प्रकारसे जीवको समग्र अवदान प्रदान करनेवाली प्रकृतिके प्रति मानवका विशेष दायित्व है कि वह उसका यथोचित सम्यक् उपयोग करते हुए उसका संरक्षण करे। प्रकृतिका असम्यक् दोहन पर्यावरण और विश्वस्रष्टाके प्रति मानवकी कृतघ्नता है।

प्राचीन समयमें जब मानवकी आवश्यकताएँ सीमित थीं, उस समय लोग प्रकृतिकी गोदमें प्रसन्न थे, सर्वत्र अमन-चैन भी था, किंतु जैसे-जैसे मानवने तथाकथित भौतिक विकासके पथपर अग्रसर होना शुरू किया, आर्थिक विकासकी उसे लगन लगी, उसने प्रकृतिका मनमाने ढंगसे दोहन प्रारम्भ कर दिया। अपनी अनन्त आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये उसने प्राकृतिक तत्त्वोंसे छेड़छाड़ प्रारम्भ कर दी। आज अनधिकृत रूपसे वृक्ष-सम्पदाका उच्छेदन हो रहा है। मृद्-संरक्षणकी विपदा सामने उपस्थित है। पर्वत-शृंखलाएँ विखंडित हो रही हैं; जलका स्तर घटता जा रहा है। जलमें प्रदूषणकी मात्रा दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। वायुमण्डल अनेक प्रकारकी जहरीली, विनाशकारी एवं भयावह गैसोंसे व्याप्त हो रहा है। भूमण्डल एवं अन्तरिक्षकी उष्णताका ताप भीषण संताप प्रदान कर रहा है। शान्त वातावरणका सर्वथा अभाव होता जा रहा है। अनेक प्रकारकी विकृतिपूर्ण ध्वनियोंका संघोष कर्णकुहरों तथा मस्तिष्कको विकृत करनेके लिये कटिबद्ध है। वातावरणमें व्याप्त दूषित वायु नेत्रोंके लिये असाध्य विकृति बन रही है। सूर्यका अति उष्ण ताप धरतीका वक्ष:स्थल विदीर्ण कर रहा है और मानव-जीवनको संताप पहुँचा रहा है। बड़े-बड़े उद्योगों, कल-कारखानोंसे निष्कासित दूषित धुआँ और मल न केवल जलको दूषित कर रहा है, न केवल कृषिक्षेत्रको हानि पहुँचा रहा है, अपितु समस्त वातावरणको धूमिल भी बना रहा है। अतिवृष्टि

एवं अनावृष्टि-जैसे प्राकृतिक प्रकोप प्रतिवर्ष उपस्थित हैं। विज्ञानके आविष्कारोंके दुरुपयोग और अनवरत प्रयोगने प्रदूषण और विनाशको जन्म दिया है।

स्थूल पर्यावरणके दूषणके परिणामस्वरूप ही मानवकी सूक्ष्म प्रकृति भी दूषित होती जा रही है। प्रकृतिके दूषण और असंतुलनका ही यह प्रभाव है कि आज अनेक प्रकारके असाध्य रोगों और मानसिक व्याधियोंसे मानव ग्रस्त होता जा रहा है। अनेक प्रकारके रासायनिक प्रयोगोंसे भूमिकी उर्वराशक्ति विलुप्त होती जा रही है। खाद्यान्नोंका सत्त्व लुप्तप्राय हो गया है, औषधीय वनस्पतियोंका प्रभाव शिथिल हो गया है। आजकी तथाकथित आर्थिक समृद्धिने आध्यात्मिक सम्पदाको आच्छादित कर दिया है। वैचारिक प्रदूषणसे मानव आज किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया है, यही कारण है कि उसने अपने यथार्थ आत्मकल्याणके पथको विस्मृत कर दिया है। आज रुचिकी प्रधानता हो गयी है, मतिकी नहीं। यह धारणा मानव-जगत् ही नहीं, सम्पूर्ण चराचर जगत्के लिये अत्यन्त भयावह है।

इन्हीं सब बातोंका सम्यक् विमर्श करनेकी दृष्टिसे और सुखमय एवं शान्तिमय जीवन जीनेके उपायोंका विश्लेषण करनेहेतु तथा कैसे परमानन्दके उस निरामय एवं मंगलमय पथपर अग्रसर हुआ जा सके, इन बातोंका यत्किंचित् दिग्दर्शन करानेके लिये '**कल्याण**'के आगामी वर्षका विशेषाङ्क '**पर्यावरण अङ्क**'के नामसे प्रकाशित करनेका विचार है। वर्तमान समयमें इन विषयोंकी चर्चा इसलिये भी अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होती है, ताकि हमारी दिनचर्या और जीवनचर्या शान्तिमय, सुखमय, आनन्दमय और सब प्रकारसे सर्वथा निरामय बन सके, साथ ही हमारी दृष्टि बहिर्मुखी न होकर अन्तर्जगत्की ओर उन्मुख हो सके।

इस सन्दर्भमें हम कल्याणके गण्यमान्य लेखक महानुभावों, आचार्यगणों, पर्यावरणके अभिज्ञजनों, अन्तरिक्ष-विज्ञानके गुणीजनों तथा सुहृदय सुधीजनोंसे आलेखके रूपमें सहयोगकी सादर अभ्यर्थना करते हैं। हमारा निवेदन है कि वे अपना आलेख जुलाई २०२४ तक प्रेषित करनेकी कृपा करें। सरल भाषामें एवं चित्र तथा सारणियोंसे संवलित प्रामाणिक आलेखोंको प्रकाशनमें प्राथमिकता दी जा सकेगी। यहाँ विशेषाङ्कको एक संक्षिप्त सूची संकेतरूपसे प्रस्तुत है।

विनीत—

प्रेमप्रकाश लक्कड़

(सम्पादक)

प्रस्तावित विषय-सूची

पर्यावरण—परिचय, महिमा और उपयोगिता

१- पर्यावरण शब्दकी निरुक्ति, निर्वचन एवं अर्थ-विस्तार
२- पर्यावरण—स्वरूपविमर्श और तत्त्वदर्शन
३- स्थूल पर्यावरण और सूक्ष्म पर्यावरण
४- पर्यावरण और जीवजगत्का सनातन सम्बन्ध
५- पर्यावरणकी महिमा, उपयोगिता और जीवनिकाय
६- भारतीय सनातन संस्कृतिमें स्वच्छ एवं पवित्र परिवेशका माहात्म्य
७- हमारे व्रत-पर्व और पर्यावरण
८- स्वच्छता, शुचिता एवं पवित्रताका तात्पर्य-विमर्श
९- मानवकी मौलिक आवश्यकताएँ और प्रकृतिका अवदान
१०- मानव जीवनके सन्दर्भमें पर्यावरणका माहात्म्य
११- पर्यावरण और चराचर जीवनिकाय
१२- पर्यावरणके पाँच तत्त्व—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश
१३- प्राणिजगत्के सम्बन्धमें पाँच भौतिक तत्त्वोंकी मीमांसा

१४- पर्यावरण और पंचतत्त्वोंका सम्बन्ध
१५- पृथ्वी आदि पाँच भौतिक पदार्थ और उनकी तन्मात्राएँ—
(क) पर्यावरण—पृथ्वीतत्त्व और गन्धतन्मात्रा
(ख) पर्यावरण—जलतत्त्व और रसतन्मात्रा
(ग) पर्यावरण—तेज (अग्नि)-तत्त्व और रूप-तन्मात्रा
(घ) पर्यावरण—वायुतत्त्व और स्पर्शतन्मात्रा
(ङ) पर्यावरण—आकाशतत्त्व और शब्दतन्मात्रा
१६- पंचीकरणका सिद्धान्त और पर्यावरणसंरचना
१७- जीवजगत्का पर्यावरणके प्रति दायित्व
१८- पर्यावरण-असंतुलनका जीवजगत्पर प्रभाव

पर्यावरणके विविध आयाम

१- पृथ्वी एवं जलरूप पर्यावरणके विविध सन्दर्भ—[स्थलीय क्षेत्र, मृदा, वन, उपवन, उद्यान, वाटिका, वृक्ष आदि वन्य सम्पदा, औषधीय वनस्पति, शस्य सम्पदा, पर्वत, पठार, समतलभूमि, कृषिक्षेत्र, गोचरभूमि, कुंज, निकुंज, नदियाँ, झील, सरोवर, झरना, जलाशय, कूप, वापी तथा तड़ाग आदि]
२- पर्यावरण-संरक्षणमें हिमाच्छादित पर्वतशिखरोंका योगदान
३- पर्यावरणके शोभादायक तत्त्व—[पुष्पवाटिका, हिमशिखर, निर्झर, जलाशय, सूर्योदय, सूर्यास्त तथा प्राकृतिक मनोरम दृश्य]
४- सनातन धर्म-संस्कृतिमें पर्यावरण-संरक्षणके प्रतीक—[पीपल, तुलसी, आम, बरगद, केला, आँवला, नीम, दूर्वा एवं कुश आदि]
५- पर्यावरणकी महिमामें पंचपल्लवोंका स्थान
६- पर्यावरणके सन्दर्भमें ग्रामकी सीमामें स्थित चैत्यवृक्षका माहात्म्य
७- इष्टापूर्तधर्मका सम्पादन और पर्यावरण-संरक्षण
८- वायुरूप पर्यावरणके विविध रूप—
(क) शास्त्रोंमें वर्णित प्राणादि पंच वायु और धनंजय आदि पंचवायुओंका स्वरूप
(ख) ऑक्सीजन, कार्बन डाई ऑक्साइड आदि वैज्ञानिक गैसोंका रूप एवं पर्यावरण-विमर्श
९- पर्यावरणके संरक्षण एवं शुचितामें वनों-उपवनों एवं पर्वतोंका योगदान
१०- पर्यावरण-शुचिताके आदर्श—ऋषि-महर्षियोंके आश्रम, पर्णकुटियाँ और गुरुकुलोंका तपोमय परिवेश।
११- पर्यावरणको स्वच्छ, सुरभिमय और पवित्र बनानेवाली वनस्पतियाँ एवं औषधियाँ
१२- झरनों, जलाशयों, नदीतटों और पर्वतकन्दराओंके नीरव परिवेशका अन्त:करणकी पवित्रतामें योगदान
१३- निर्मल, निर्जन वातावरणमें ही पवित्र विचार प्रादुर्भूत
१४- भारतकी अरण्य-संस्कृति तथा नैमिषारण्य आदि द्वादश पौराणिक अरण्य
१५- आधुनिक भारतके राष्ट्रीय उद्यान एवं अभयारण्य
१६- सप्तसागर, नदियोंके संगम और पर्यावरण
१७- पर्यावरणके परिप्रेक्ष्यमें तीर्थों एवं देवालयोंकी अवधारणा
१८- तीर्थस्थलोंका शुचिमय आवरण और देहशुद्धि
१९- यज्ञोंके सम्पादनसे पर्यावरण एवं अन्तरिक्षकी पवित्रता
२०- हविर्द्रव्य, शाकल्य एवं समिधाका आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक रहस्य और पर्यावरणसे सम्बन्ध
२१- पर्यावरणकी परिशुद्धिमें गोवंशका अवदान
२२- देहशुद्धि एवं वातावरणकी परिशुद्धिमें पंचगव्य एवं पंचामृतका माहात्म्य
२३- पर्यावरणकी संरक्षिका—वन्यसम्पदा
२४- वनस्पति उद्यान, वन्यजीव एवं पर्यावरण
२५- पर्यावरणके आदर्श प्रतिमान
२६- पर्यावरणके संरक्षक एवं उन्नायक तत्त्व
२७- पर्यावरण और खाद्यान्नोंका तादात्म्य
२८- पर्यावरण—ग्राम्यजीवन एवं नागरजीवन
२९- गृहस्थधर्म और पर्यावरण-संरक्षण

सत्साहित्य एवं संस्कृतियोंमें पर्यावरण-दिग्दर्शन

१- वेदोंमें पर्यावरणकी महिमा और उसके रक्षणके उपायोंका निदर्शन
२- वेदोंमें पर्यावरण-सम्बन्धी सूक्तोंकी वैज्ञानिक मीमांसा
३- वैदिक सनातन संस्कृति और पर्यावरण
४- अथर्ववेद और पर्यावरण विज्ञान

५- उपवेद एवं वेदांग ग्रन्थोंमें पर्यावरण
६- औपनिषद ब्रह्ममीमांसामें पवित्र पर्यावरणका अवदान
७- पौराणिक पर्यावरणका स्वरूप-विवेचन
८- पुराणोंमें प्राप्त पर्यावरणका बृहद् वाङ्मय
९- पुराणोंमें वर्णित वृक्षारोपणका माहात्म्य और वृक्षारोपणका शास्त्रीय विधान
१०- मेरुगिरिका पर्यावरण सौन्दर्य
११- पर्यावरण-शुद्धिका महाभियान समुद्र-मन्थन
१२- कालिय-दमनमें छिपे नदीशोधनके सूत्र
१३- वृक्षायुर्वेदकी समीक्षा
१४- वाल्मीकीय रामायण, महाभारत तथा श्रीरामचरित-मानसमें विवेचित पर्यावरण-शुचिताका माहात्म्य
१५- श्रीमद्भगवद्गीतामें निरूपित अष्टविध प्रकृति
१६- यौगिक साधनामें पर्यावरणका योगदान
१७- योगदर्शन और पर्यावरण
१८- तन्त्रागमीय पर्यावरणदर्शन
१९- जैनवाङ्मयमें पर्यावरणदर्शन
२०- बौद्धवाङ्मयमें पर्यावरणदर्शन
२१- विभिन्न धर्म-सम्प्रदायग्रन्थोंमें पर्यावरण
२२- संस्कृत काव्यसाहित्यमें पर्यावरण
२३- महाकवि कालिदासकी कृतियोंमें प्रकृति-सौन्दर्यका चित्रण
२४- संस्कृत गद्यसाहित्यमें प्राकृतिक सुषमाका निदर्शन
२५- हिन्दीके कवियोंके कवित्वमें पर्यावरणदर्शन
२६- पर्यावरणविद् घाघ-भड्डरीका मौसम-विज्ञान।

पर्यावरण-प्रदूषणकी स्वरूप-मीमांसा

१- भूमि आदि पंचतत्त्वोंके प्रदूषणकी रूपरेखा
२- प्रदूषण-नियन्त्रणका स्वरूप-विमर्श
३- प्रकृतिके भूमि आदि पंचतत्त्वोंका पोषण ही पर्यावरण-संरक्षण
४- पंचतत्त्वोंका शोषण ही पर्यावरण-दूषणका मूल
५- प्रकृतिका अप्राकृतिक दोहन—पर्यावरण-दूषणका मूल कारण
६- पर्यावरण-दूषणकी विविधता—वायुप्रदूषण, जल-प्रदूषण, ध्वनिप्रदूषण, दृष्टिप्रदूषण और गन्धप्रदूषण
७- पर्यावरणको दूषित करनेवाली वैकृतिक गैसें और उनका फैलाव
८- ओजोन परतकी भयावह स्थिति
९- पर्यावरण-दूषणसे अन्तरिक्षके तापमानमें असाधारण वृद्धि
१०- पर्यावरण-संरक्षण और विज्ञानके आविष्कार
११- औद्योगिक प्रदूषणसे जल और वायुका दूषण
१२- भौतिक उन्नति और पर्यावरण
१३- पर्यावरण और ईति-भीति—

अतिवृष्टिरनावृष्टिः शलभा मूषिकाः खगाः।
प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेते ईतयः स्मृताः॥

१४- पर्यावरण, खगोलशास्त्र और अन्तरिक्षविज्ञान
१५- पर्यावरण और ज्योतिर्विज्ञान
१६- पर्यावरण एवं आयुर्वेद
१७- कृषिविज्ञान और पर्यावरण
१८- पर्यावरण और वृष्टिविज्ञान
१९- मेघोंकी संरचना, प्रकार एवं भेद

पर्यावरण और अध्यात्म

१- भारतीय सनातन संस्कारोंमें निदर्शित पर्यावरणकी उपयोगिता और उसके रक्षणका उपलब्ध बोध
२- पर्यावरण-शुचिताके कतिपय उपाय
३- प्रकृति-संरक्षणके संसाधन और मानव-जीवन
४- पवित्र वातावरण और अन्तःकरणकी निर्मलता
५- वैचारिक परिशुद्धि प्रकृति-संरक्षणकी संवाहिका
६- पर्यावरणकी वैचारिक पवित्रता और अध्यात्म जगत्
७- पर्यावरणकी आध्यात्मिकताका नैतिक संदेश
८- पर्यावरण और भक्तिमय परिवेश
९- 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'
१०- पर्यावरण और देवविज्ञान
११- पर्यावरणकी दैवी-उपासना
१२- साधनाकी तपोभूमि पवित्र वातावरण
१३- स्थूल पर्यावरणसे सूक्ष्म पर्यावरणमें प्रवेशकी साधना—मानव-जीवनकी सफलता।

गीताप्रेससे प्रकाशित—विशिष्ट प्रकाशन

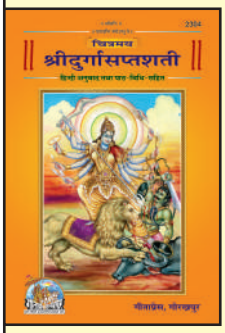

चित्रमय श्रीदुर्गासप्तशती, सटीक (कोड 2304) ग्रन्थाकार [चार रंगोंमें]— दुर्गासप्तशती हिन्दू-धर्मका सर्वमान्य ग्रन्थ है। इसमें भगवतीकी कृपाके सुन्दर इतिहासके साथ ही बड़े-बड़े गूढ़ साधन-रहस्य भरे हैं। कर्म, भक्ति और ज्ञानकी त्रिविध मन्दाकिनी बहानेवाला यह ग्रन्थ भक्तोंके लिये वाञ्छाकल्पतरु है। सकाम भक्त इसके सेवनसे मनोऽभिलषित दुर्लभ वस्तु तथा निष्काम भक्त परम दुर्लभ मोक्षको प्राप्त करते हैं। माँ दुर्गाजीकी 100 से अधिक मनोहारी रंगीन चित्रोंके साथ चार रंगोंमें आर्टपेपरपर प्रकाशित किया गया है। मूल्य ₹450, डाकखर्च ₹90

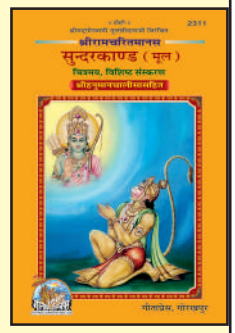

चित्रमय श्रीरामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड—मूल (कोड 2311) ग्रन्थाकार [चार रंगोंमें]—'सुन्दरकाण्ड' उत्तर भारतीयोंका कण्ठहार बना हुआ है। लाखों श्रद्धालु इसका नित्य अथवा साप्ताहिक पाठ करते हैं। ऐसी मान्यता है कि श्रद्धापूर्वक इसके पाठ करनेसे श्रीहनुमान्‌जी उसकी मनोकामनाको पूर्ण करते हैं। इस काण्डमें एक भी प्रसंग ऐसा नहीं है जिससे आदर न उत्पन्न होता हो। बहुतसे प्रसंग तो ऐसे हैं जिनसे चित्त भी द्रवित होता है। ऐसे प्रसंगोंमें सुरसापरीक्षा-प्रसंग, लंकिनीकी स्वकार्यनिष्ठा, हनुमान-विभीषण-मिलन, त्रिजटा चरित एवं सीता सान्त्वना आदि चरित आदरणीय हैं।

प्रस्तुत पुस्तकमें प्रसंगानुकूल श्रीहनुमान्‌जीकी लीलाके 70 से अधिक आकर्षक रंगीन चित्र भी दिये गये हैं। आर्टपेपर पर छपी इस पुस्तकका मूल्य ₹150, डाकखर्च ₹50

चित्रमय रामरक्षास्तोत्रम् (कोड 2151) पुस्तकाकार [बेड़िआ]— चार रंगोंमें आर्ट पेपरपर छपा यह

स्तोत्र आत्मरक्षाके साथ श्रीरामकी कृपा-प्राप्तिका प्रमुख साधन है। इसके पाठसे समस्त कामनाओंकी पूर्ति होती है। इसमें भगवान् रामसे सम्बन्धित कुल 36 आकर्षक मनोहारी रंगीन चित्र दिये गये हैं। श्रीरघुनाथजीका चरित्र सौ करोड़ विस्तारवाला है और उसका एक-एक अक्षर भी मनुष्योंके महान् पापोंको नष्ट करनेवाला है—**चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्। एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्॥** (रामरक्षास्तोत्रम्-1) श्रद्धालु भक्तोंको नित्यपाठ करनेके लिये संग्रहणीय है। मूल्य ₹20

'कल्याण' नामक हिन्दी मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण

1- प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर, 2-प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक

3- मुद्रक एवं प्रकाशकका नाम—केशोराम अग्रवाल, (गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये), राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

4- सम्पादकका नाम—प्रेमप्रकाश लक्कड़, राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

5- उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस पत्रिकाके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं:—गोबिन्दभवन-कार्यालय, 151, महात्मा गाँधी रोड, कोलकाता (पश्चिम बंगाल सोसाइटी पंजीयन अधिनियम 1961 के अन्तर्गत पंजीकृत)।

मैं केशोराम अग्रवाल गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं।

केशोराम अग्रवाल (गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये)—प्रकाशक

प्र० ति० 20-02-2024
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2023-2025
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR-03/2023-2025

गीताभवन, स्वर्गाश्रममें नवाह्न पारायण, यज्ञोपवीत एवं सत्संगकी सूचना

गीताभवनमें चैत्र एवं आश्विन नवरात्रमें **श्रीरामचरितमानसका सामूहिक नवाह्न-पाठका** कार्यक्रम रहता है। इस वर्ष चैत्र नवरात्रका पाठ **9 अप्रैलसे 17 अप्रैल तक होगा**। सभी मानसप्रेमी भाई-बहन पाठमें सम्मिलित होनेके लिये सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं। जो भाई-बहन यहाँ आकर पाठमें सम्मिलित नहीं हो सकते हैं, उनके लिये विशेष व्यवस्था की गयी है, पाठका सीधा प्रसारण **https://youtube.com/@gita-satsang** पर किया जायगा, जिससे जुड़कर आप घरसे ही गीताभवनमें हो रहे सामूहिक नवाह्न पाठमें सम्मिलित हो सकते हैं और रामायण-पाठका लाभ ले सकते हैं।

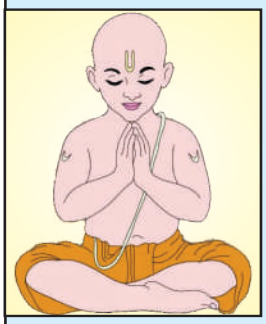

गतवर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी द्विजातियोंका सामूहिक **यज्ञोपवीत-संस्कार दिनांक 21 अप्रैल, दिन-रविवार** (चैत्र शुक्ल त्रयोदशी)-को होना निश्चित हुआ है, जिसकी **पूजा 20 अप्रैल, दिन शनिवारको प्रारम्भ हो जायगी।** इच्छुक जनोंको **19 अप्रैल, दिन शुक्रवार** तक गीताभवन पहुँच जाना चाहिये। इसका सीधा प्रसारण **https://youtube.com/@gita-satsang** पर किया जायगा, जिससे जुड़कर आप घरसे ही गीताभवनमें हो रहे इस अति विशिष्ट संस्कार-कार्यक्रममें सम्मिलित होनेका सौभाग्य प्राप्त कर सकते हैं।

गीताभवन, स्वर्गाश्रम ऋषिकेशमें ग्रीष्मकालमें सत्संगका लाभ श्रद्धालु एवं आत्मकल्याण चाहनेवाले साधकोंको प्रारम्भसे ही प्राप्त होता रहा है। गतवर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी वैशाख-कृष्ण चतुर्दशी, विक्रम संवत 2081 (दिनांक 07-05-2024, दिन मंगलवार)-से आषाढ़ कृष्ण नवमी (दिनांक 30-06-2024, दिन रविवार)-तक सत्संगका विशेष आयोजन किया जायगा, जो लगभग 2 मासतक चलेगा। इस अवसरपर संत-महात्मा एवं विद्वद्गणोंके पधारनेकी बात है। गीताभवनमें आयोजित दुर्लभ सत्संगका लाभ श्रद्धालु और कल्याणकामी साधकोंको अवश्य उठाना चाहिये।

गीताभवनमें संयमित साधक-जीवन व्यतीत करते हुए सत्संग-कार्यक्रमोंमें सम्मिलित होना अनिवार्य है। यहाँ आवास, भोजन, राशन-सामग्री आदिकी यथासाध्य व्यवस्था रहती है।

महिलाओंको अकेले नहीं आना चाहिये, उन्हें किसी निकट सम्बन्धीके साथ ही यहाँ आना चाहिये। गहने आदि जोखिमकी वस्तुओंको, जहाँतक सम्भव हो, नहीं लाना चाहिये।

सत्संगमें आनेवाले साधकोंको **आधारकार्ड** अथवा फोटोयुक्त अन्य **पहचान-पत्र** रखना आवश्यक है।

व्यवस्थापक-**गीताभवन, पो०-स्वर्गाश्रम—249304**

GITA PRESS, GORAKHPUR [SINCE 1923]

e-mail : **booksales@gitapress.org**—थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
Gita Press web : **gitapress.org**—सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।
गीताप्रेसकी पुस्तकें Online कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये—
www.gitapress.org; gitapressbookshop.in

If not delivered; please return to Gita Press, Gorakhpur—273005 (U.P.)